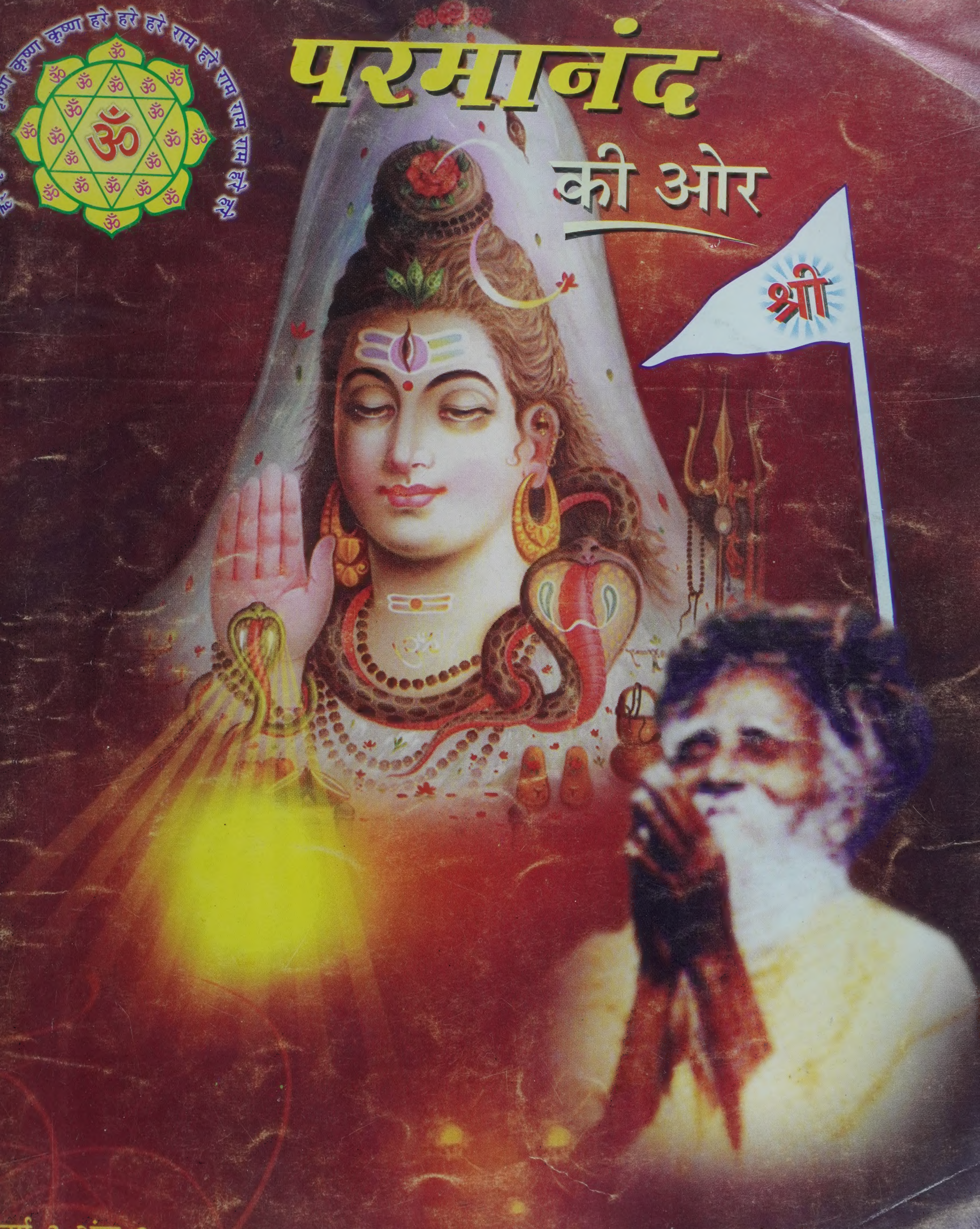
श्री श्री सीताराम दास ओंकारनाथ देव के आदर्शों पर आधारित हिन्दी आध्यात्मिक पत्रिका

परमानंद की ओर



वर्ष-3 अंक 9

जनवरी-2009

श्री श्री ओंकारनाथ आश्रम राँची द्वारा प्रकाशित

श्री राम नाम लिखने की महिमा और विधि

श्री श्री गुरूवे नमः

श्रीरामरामरामेति ये वदन्त्यपि सर्वदा।
तेषां भुक्तिश्च मुक्तिश्च भविष्यति न संशयः।।

जो सर्वदा श्रीराम राम बोलते हैं उन्हें भोग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। नियमित 'श्रीराम राम राम' यत्नपूर्वक शुद्धभावनापन्न होकर लिखने से रोगी, रोगमुक्त होता है और भोगी, निश्चय ही अभिलषित भोग को प्राप्त करता है। इसका विशद् विवरण 'राम नाम लेखन महिमा' पुस्तक में है।

सुन्दर कागज पर स्थायी स्याही से लिखना होगा। एकसाइज बुक में लिखा जा सकता है। प्रत्येक पृष्ठ के 36 लाइन में कुल 324 और एक, कुल 325 नाम होते हैं। प्रत्येक दिन 4 पृष्ठ लिखने पर एक वर्ष में चार लाख चौहत्तर हजार पांच सौ राम-नाम होते हैं। नीचे लिखने की प्रणाली दी गयी है। राम नाम खाता भेजने का पता

(1) किंकर जगन्नाथ दास, "श्री ब्रजनाथनिकेतन", डूमुरदह, हुगली, पश्चिमबंग।

(2) किंकर जगन्नाथ दास, 54, चारू एभेन्यू, कलकत्ता - 33, पश्चिमबंग।

राम नाम लिखने की प्रणाली

श्रीराम राम राम

श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम
श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम	श्रीराम राम राम

S/N:442

परमानंद की ओर

वर्ष-3 अंक-9 जनवरी, 2009

वार्षिक सेवा : 60/- (साठ रुपये)

अनुक्रमांक

नियमावली

1. 'परमानन्द की ओर' हिन्दी आध्यात्मिक पत्रिका नियमित रूप से 'श्री ओंकार नाथ आश्रम', कार्यालय-36/सी, पार्क रोड, 1/बी, अशोक नगर, राँची (झारखण्ड) से प्रकाशित होती है। इसकी वार्षिक सेवा रु. 60/- (साठ रुपये) तथा प्रति पत्रिका रु. 18/- (अठारह रुपये) है।
2. सदस्यता शुल्क भेजने, विज्ञापन अथवा किसी भी प्रकार की जानकारी एवं पत्राचार करने के लिए कर्मकिंकर से पत्राचार करें।
3. पत्राचार के समय सदस्यता संख्या लिखना न भूलें अन्यथा पत्रोत्तर देना संभव नहीं होगा।
4. जवाबी कार्ड भेजने पर ही पत्रोत्तर देना संभव होगा।
5. धर्म और नीति विषयक लेख, कविता, कहानी, नाटक और तथ्य बहुल रचनाएं सादर आमंत्रित हैं। कागज के एक पृष्ठ पर ही रचना साफ-साफ लिखकर सम्पादक को उपरोक्त पते पर भेजें।
6. किसी व्यक्ति अथवा सम्प्रदाय की निन्दा सूचक लेख स्वीकृत नहीं होगें।
7. सम्पादक आवश्यकतानुसार लेख में परिवर्त्तन, परिवर्धन और परिमार्जन कर सकते हैं। उनके द्वारा प्रकाशन हेतु लिये गये निर्णय सर्वसम्मत होंगे। अस्वीकृत लेख लौटाया नहीं जायेगा।
8. पत्रिका के अंक में विज्ञापन प्रकाशन के लिए विज्ञापनदाता को पूर्ण-पृष्ठ के लिए एक हजार एवं अर्द्ध पृष्ठ में प्रकाशन के लिए पाँच सौ रुपये कोषाध्यक्ष को निर्धारित पते पर मनिऑर्डर या बैंक ड्राफ्ट द्वारा भेजना होगा।
9. प्रकाशन में लिये गये लेख एवं कवितायें भावनाओं पर आधारित हैं जिसमें व्याकरण संबंधी त्रुटि सम्भव है।
10. प्रकाशित रचना के विचार विभिन्न रचयिता के हैं जिसमें सम्पादक की कोई जिम्मेदारी नहीं है।
11. पत्रिका प्रकाशन संगठन के सभी सदस्य अवैतनिक हैं।

(सम्पादक)

सम्पादक की ओर से

सत्संग प्रेमियो !

जय गुरु

मनुष्य-शरीर बहुत ही दुर्लभ ह। स्वर्ग और नरक दोनों ही लोकों में रहने वाले जीव इसकी अभिलाषा करते रहते हैं; क्योंकि इसी शरीर में अन्तःकरण की शुद्धि होने पर ज्ञान अथवा भक्ति की प्राप्ति हो सकती है। स्वर्ग अथवा नरक का भोगप्रधान शरीर किसी भी साधन के उपयुक्त नहीं है। बुद्धिमान पुरूष को न तो स्वर्ग की अभिलाषा करनी चाहिए और न नरक की ही और तो क्या, इस मनुष्य-शरीर की भी कामना न करनी चाहिए, क्योंकि किसी भी शरीर में गुणबुद्धि और अभिमान हो जाने से अपने वास्तविक स्वरूप की प्राप्ति के साधन में प्रमाद होने लगता है। यद्यपि यह मनुष्य शरीर है तो मृत्युग्रस्त ही, परन्तु इसके द्वारा परमार्थ की; सत्य वस्तु की प्राप्ति हो सकती है। बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि यह बात जानकर मृत्यु होने के पूर्व ही सावधान होकर ऐसी साधना कर ले, जिससे वह जन्म-मृत्यु के चक्कर से सदा-सदा के लिए छूट जाय-मुक्त हो जाय।

यह शरीर एक बृक्ष है। इसमें घोसला बनाकर जीवरूपी पक्षी निवास करता है। इसे यमराज के दूत प्रशिक्षण काट रहे हैं। जैसे पक्षी कटते हुए वृक्ष को छोड़कर उड़ जाता है, वैसे ही अनाशक्त जीव भी इस शरीर को छोड़कर मोक्ष का भागी बन जाता है परन्तु आसक्त जीव बृक्ष से मोह कर दुःख ही भोगता रहता है। ये दिन और रात क्षण-क्षण में शरीर की आयु को क्षीन कर रहे हैं। यह जानकर जो भय से काँप उठता है, वह व्यक्ति इसमें आसक्ति छोड़कर परमतत्व का ज्ञान प्राप्त कर लेता है और फिर इसके जीवन-मरण से निरपेक्ष होकर अपने आत्मा में ही शान्त हो जाता है। यह मनुष्य शरीर समस्त शुभ फलों की प्राप्त का मूल है और अत्यंत दुर्लभ होने पर भी अनायास हमसवों को सुलभ हो गया है। यह प्रभु कृपा है। इस संसार-सागर से पार जाने के लिए यह एक सुदृढ़ नौका है। शरण-ग्रहण मात्र से ही गुरुदेव इसके केवट बनकर पतवार का संचालन करने लगते हैं और स्मरण मात्र से ही भगवान अनुकूल वायु के रूप में इसे लक्ष्य की ओर बढ़ाने लगते हैं तो क्यों नहीं, हम सभी भी अपने गुरु का श्रीचरण-शरण-ग्रहण कर अपने इष्ट मंत्र का जप तथा तारक ब्रह्म मंत्र के भजन में अपने को लगाकर इस संसार-सागर की नैया का पतवार ''श्रीठाकुर'' के हाथों सौंप दे जिससे जन्म-मृत्यु का बंधन सदा-सदा के लिए समाप्त हो जाय और यह दुर्लभ-पावन मानव-जीवन सफल हो जाय।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

जय गुरु
(राधाकृष्ण)
सम्पादक



(गुरु महिमामृत)

गुरु स्तव

श्री श्री गुरुवे नमः

गुरुवक्त्रे स्थितं ब्रह्म प्राप्यते तत्प्रसादतः।
स्वाश्रमोक्तं स्वजातिंच स्वकीर्तिं पुष्ठिबर्द्धिनीम्।
अन्यत् सर्व परित्यज्य गुरोन्यं न भावयेत॥
गुरु वक्त्रे स्थिता गुरु भक्त्यानुलभ्यते।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गुरोराराधनं कुरू॥

(गुरु गीता)

ब्रह्मतत्त्व गुरु के मुख से सुनने पर स्पष्ट होता है। वे अनुभूति से बोलते हैं, पठन से नहीं इसीलिए गुरुमुख में ब्रह्मतत्व अवस्थित है। गुरु के प्रसाद से शिष्य वह तत्व लाभ करने में सफल होता है। अपना-अपना आश्रम विहित स्वजाति पुष्ट करनेवाली सत् कीर्ति और अन्य धर्म, सब चिन्ता त्याग कर गुरु से भिन्न और कोई चिन्ता न करें। अर्थात् एकमात्र गुरु की ही भावना करें। चिन्तन की वस्तु केवल गुरु ही होंगे, अपना और पार्थिव विषय नहीं।

ब्रह्मविद्या गुरु के मुख में अवस्थित है, शिष्य, गुरु-भक्ति द्वारा वह लाभ करते हैं, अतएव सब प्रयत्नों के द्वारा गुरु की आराधना करें।

सुधाधारा

नाम यज्ञ महायज्ञ सर्वयज्ञ सार।
कलियुग में इसी यज्ञ का हुआ प्रचार।।

बड़ा ही सुगम पथ सहज सरल।
अविराम जपो शान्ति पाओ निरमल।।

जपो नाम जब तक देह में प्राण।
जपने से नित नाम पाओ महाप्राण।।

उस प्राण से यज्ञ प्राण मिलेगा जब।
''देह मैं'' यज्ञ बोध मिट जाय तब।।

आनन्द से चलोगे तुम सानन्द बैठोगे।
आनन्द से खाओगे और सानन्द सोओगे।

आनन्द के शिवा यहाँ नहीं रहे अन्य।
जपो नाम जपो नाम हो जाओ धन्य।।

आनन्द में उत्पत्ति और आनन्द में स्थिति।
परिणाम आनन्द से होगी निवृति।।

आनन्द के अभिलाषी तुम आठो-याम।
जपो नाम दिन-रात दास सीताराम।।

कुत्ते का सम्वाद

-श्रीश्री ठाकुर

कल जिस समय चण्डीगाछा से आ रहा था, उसी समय संथाल बस्ती में तीन-चार कुत्ते भौंकते हुए मेरे पीछे-पीछे आने लगे, मानों काटने को ही तैयार हों। मैं हाथ की माला से राम-राम जप करता हुआ धीरे-धीरे अग्रसर होने लगा। प्रतिक्षण भय लगता था कि इस बार वे अवश्य काट लेंगे और दूसरे ही क्षण सोचता कि कुत्ता भी तो तुम ही हो; किन्तु यह भाव टिकता नहीं था। मैंने पीछे फिर कर नहीं देखा। कोई चेष्टा भी नहीं की। थोड़ी देर तक भौंक कर वापस चले गये।

कुत्ता बनकर खूब उपदेश दे गये! तब नहीं समझ पाया; बाद में समझ में आया, विश्वास दृढ़ न होने पर भी सतत् तुम्हारी याद रहने से सुखदुख अभिभूत नहीं कर सकते। 'सब तुम्ही हो' यह विश्वास दृढ़ होने पर तो फिर कोई बात ही नहीं।

इस संसार में शोक, दुःख, रोग, अभाव, ऋण, सुख, ऐश्वर्य, साधुवाद, निन्दा इत्यादि कुत्ते की तरह भौं-भौं चिल्लाते ही हैं। उस पर ध्यान न देकर, राम-राम करते-करते अग्रसर होने से ये लोग कुछ क्षण चिल्लाकर पीछा छोड़ देंगे। इसके बाद अपने-आप शान्त हो जायेंगे।

रोग, शोक, दुःख, ज्वाला, अभाव, ऋण, धन, ऐश्वर्य, सुख, शान्ति, 'सब ही तो तुम हो', यह विश्वास स्थिर होने पर फिर मन आकुल नहीं हो सकता। यह बात ध्रुव सत्य है। विश्वास दृढ़ नहीं होने तक सब ही तुम हो, यह भाव मन में होता रहे और फिर विक्षेप आता हो तो उस अवस्था में भी "राम-राम" जप करते रहने पर तुम्हारी कृपा अवश्य प्राप्त होगी और तरह-तरह के कुत्तों की चिल्लाहट एवं आक्रमण से भी छुटकारा हो सकेगा। यह संसाररूपी कुत्ता तो भौंकता ही रहेगा। सुख में कहो, दुःख में कहो, ऐश्वर्य में कहो, मान में कहो, अपमान में कहो, अर्थागम में कहो, अर्थ व्यय में कहो, यह चिल्लाये बिना नहीं रह सकेगा। उसे भौंकता रहने दो! उस पर ध्यान न देकर नाम स्मरण करना और 'सब तुम्ही' 'सब तुम्ही' इस प्रकार मनन करना चाहिये। ऐसा करने से वह सहज ही शान्त हो जायेगा।

देखो, तुम कितने रूप धारण कर मुझे यह उपदेश देते हो, अभय आश्वासन देते हो-तथापि मैं स्थिर नहीं हो पाता। क्या नित्यकर्म में, क्या पूजा-पाठ में, यदि प्राण के भीतर तुम्हारी अनुभूति न मिले तो प्राण अत्यन्त निराश हो जाते हैं। मन में होता है, सब ही व्यर्थ हो गया है। किन्तु दूसरे ही क्षण जब सोचता हूं कि सब कुछ तुम्हीं हो पूजा-पाठ में आनन्द भी तुम्हीं, निरानन्द भी तुम्हीं हो तब वह भाव शेष नहीं रहता। तुम मेरा पाठ सुनते हो, यह स्मरण रख पाठ करने से खूब आनन्द आता है, किन्तु तुम्हें भूलकर पठ करने पर कुछ भी आनन्द नहीं आता। फिर सोचता हूँ कि सब कुछ तुम्हीं हो, तुम्हें छोड़ कुछ भी नहीं है, तुम्हारा विस्मरण भी तुम्ही हो, तब मन कुछ शान्त होता है।

मेरी चेष्टा से कुछ भी नहीं होगा, यह मैं खूब समझता हूं। साधना कर तुम्हें पाने की आशा करना मुर्खता के अलावा और कुछ नहीं है। मेरा साधन भजन भी कुछ नहीं है, मेरे योग ध्यान भी कुछ नहीं है, तब मैं क्या करूं? किसका आश्रय ग्रहण करूं? किससे मन की वेदना कहूं? कौन मेरी बात सुनेगा? कौन मेरी व्यथा समझेगा? कोई भी नहीं समझेगा, कोई भी किसी बात का आश्वासन नहीं देगा। सभी भय दिखाते हैं, मुझे कर्त्ता बना कर निन्दा स्तुति करते हैं। अब मैं देखता हूं कि तुम्हारे बिना मेरी कोई गति नहीं है। इसलिए तुम्हें जानना चाहता हूं। इसीलिए तुमको पकड़ना चाहता हूं। इसलिए तुम्हारे साथ बात करना चाहिता हूं। मन की बात करना बन्द नहीं कर पाता। अत: अब मन बात करेगा ही, तब आज से तुम्हारे साथ ही बात करूंगा। अच्छा क्या तुम्हें बात करने की इच्छा नहीं होती? बात करो न? गुस्सा हो गये हो? क्यों? गुस्सा कैसे आ गया? मैं तुम्हारी बात नहीं सुनता, इसलिए रूष्ट हो गये हो? अच्छा तो अब मैं तुम्हारी अवज्ञा नहीं करूंगा। जो कहोगे, वहीं करूंगा। कहो, क्या करूं? सन्या, पूजा-पाठ करूंगा, शास्त्र पथ पर चलूंगा, तुम्हारी प्रीति के लिए ही कर्म करूंगा-क्यों, अब ठीक है न? देखो, अनेकों बार तुमसे यह बात कही है। किन्तु बात रख नहीं पाता। अपना कर्म मैं सुन्दर ढंग से नहीं कर पाता, इससे अनेक दोष रह जाता है।

मैं संसार संग्राम में, बारम्बार आवागमन ओर कामादि-पीड़न से पराजित, क्लान्त एवं अत्यंत त्रस्त होकर आज तुम्हारा आश्रय चाहता हूं। दो, आश्रय दो! बातचीत करो! बात करो, बात करनी ही होगी। यह जो मैं लिख रहा हूं तुम मेरे ऊपर, नीचे, सामने, पीछे, पास में हो, क्या तुम मेरी बात नहीं सुन पाते? यदि सुन ही रहे हो, तब उत्तर क्यों नहीं देते? तुम कहाँ नहीं हो! तुम ही मिट्टी, तुम ही जल, तुम्हीं अग्नि, तुम्हीं हवा तुम्हीं आकाश हो। तुम्हीं कान, तुम्हीं त्वचा, तुम्हीं चक्षु, तुम्हीं जिह्वा, तुम्हीं घ्राण, तुम्हीं वाक्, तुम्हीं पाणि, तुम्हीं पाद, तुम्हीं पायु, तुम्हीं उपस्थ, तुम्हीं मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार, तुम्हीं दिशा, वायु, सूर्य वरूण, अश्विनीकुमार, तुम्हीं इन्द्र उपेन्द्र, यम-प्रजापति, तुम्हीं रक्त, मांस-वसा-मज्जा अस्थि-मेद सब ही तो तुम हो! वह देखो झींगुर पुकार रहा है, वह भी तो तुम्हीं हो। चारपाई तुम, बिछौना तुम, यह कागज तुम, यह लेखनी तुम, भाव तुम, भाषा भी तुम्हीं हो। जो कुछ था सब तुम थे, जो कुछ है, सब तुम हो और जो कुछ रहेगा सब तुम्हीं रहोगे। जो नहीं रहेगा वह भी तुम सब कुछ तुम! तुम मेरी बात सुन पा रहे हो? अपना अच्छा-बुरा मैं नहीं जानता हूं। सब समय तुम्हारी अच्छाई का मर्म ग्रहण न कर सकने पर मैं न जाने कैसा हो जाता हूं। ठीक तुम्हारा मैं नहीं रह जाता, जैसे अपना हो जाता हूं। तुम मुझे अपना लो-अपनाना ही होगा, क्यों नहीं अपनाओगे?

सुनो, सुनो, अभी तो यहां कोई भी नहीं है, एक बार आओ न। एक बार बात करो न!

यह क्या? कौन किसको पुकार रहा है? मुझे पुकार रहा है? यदि जानते हो, तो उस नाम से क्यों पुकार रहे हो? ओ! मैं अपना नाम जो जानता हूं,

वह इस देह का है। इन पाँच-भूतों का जो बोझ है उसका है? मालूम होता है, इसीलिए मुझे असली नाम से पुकार रहे हो! हाँ, हाँ पुकारो, खूब पुकारो। तुम्हारी पुकार सुनकर जैसे मुझे कितनी ही बातें याद आ जाती है, कितने ही काम याद आ जाते हैं। चुप मत हो जाना-पुकारो! मैं भी पुकारूँ, तुम भी पुकारो!

राम राम राम राम राम हरे हरे।
राम कृष्ण राम कृष्ण राम कृष्ण हरे हरे॥

तुम्हारी आवाज बड़ी मीठी है। मन ही मन पुकारो-मन रूप में ही पुकारो-तुम्हारी पुकार सुन कर मेरा शरीर ऐसे सिहर उठता है, मानो वह अवश हो जाता है। फिर पुकारो, फिर पुकारो। तुम्हारी पुकार सुनते-सुनते मैं सो जाऊँ- अच्छा, अच्छा।

राम कृष्ण राम कृष्ण राम कृष्ण हरे हरे।

श्री महादेव ने काशीधाम में जप होम अर्चना आदि के द्वारा सन्वत्सरकाल तक श्री राम मंत्र की उपासना की थी। अनन्तर भगवान श्री रामचन्द्र प्रसन्न होकर शंकर जी से बोले-हे परमेश्वर आप अभीष्ट वर मांगें। श्री महादेव सच्चिदानन्द आत्म। राम से बोले, हमारा क्षेत्र मणिकर्णका घाट अथवा गंगातट पर जो जीव शरीर त्याग करेगा उसे मुक्ति प्राप्त हो, इससे भिन्न मेरी और कोई प्रार्थना नहीं।

-श्रीश्री ठाकुर

गंगा अवतरण कथा

-पण्डित श्री रुद्रानन्द झा

गंगा भू पर कैसे आई, इसकी कथा पुरानी है।
सृष्टि हुई, तब धर्म बना, मनुओ के हित यह बानी है।।
ब्रह्मा ने कठोर तप करके धर्म ही को द्रव रूप किया।
ब्रह्म कमण्डलु में जा गंगा, धर्म द्रवी विश्राम लिया।।
दानी बलि के दान ग्रहण हित वामन पग विस्तार किया।
ब्रह्मलोक पहुँचा पग देखा, ब्रह्मा ने पाद्यार्घ दिया।।
विष्णु चरण से निकली गंगा, शंकर सिर पर उठा लिया।
फिर शंकर के जटाजूट से गिरि सुमेरू संस्पर्श किया।।
हिममन्डित गिरि महा हिमालय में गंगा विश्राम लिया।
वहाँ भगीरथ ने तप करके, धर्मद्रवी को मना लिया।।
भागिरथी बन निकली गंगा जन्हुमुनि आश्रम होकर।
नाम जाह्नवी पाया तबहीं रूकी नहीं आगे बढ़कर।।
गंगा द्वार उतरकर गंगा चली सिन्धु के घर चलकर।
घाट-घाट में, बाट-बाट में सब जीवों को पावनकर।।
साठ सहश्र सगर पुत्रों का गंगा ने उद्धार किया।
धर्म द्रवी गंगा माता का नाम सुमिर भवपार किया।।
शुक्ला, मकरवाहिनी, गंगा भोगवती, पुण्यामाता।
भागिरथी, जान्हवी, कहाती, नाम सुमिर नर सुख पाता।।
शतयोजन पर जो गंगा का नाम सुमरता है निशि दिन।
उसको भोग मोक्ष मिलता है, उसका होता है शुभ दिन।।
जो नर गंगा करे अपावन, उसको कौन उबारेगा।
दुःख व्याधि संताप भोगकर, अन्त नरक में जाएगा।।
गंगा गंगा कहो सदानित, गंगा पाप मिटाएगी।
रूद्र ध्यान गंगा पर धरता, गंगा पार लगाएगी।।
श्री गंगाजी की कथा पुरानी जो नर-नारी गाएँगे।
गंगा स्नान सदृश फल पाकर अन्त स्वर्गसुख पायेंगे।।

कथा-रामायण

गतांक से आगे :-

आदिकाण्ड

हर धणु भंग (शिव धणुष भंग)

चित्ताकाश-जीवात्मा और मन

जीवात्मा - अहो सखे!

मिथिलापति राजा जनक का यज्ञ स्थल

आ रहे हैं विश्वामित्र संग है श्री राम लक्ष्मण

मन - इतने दिनों बाद अब आया है जानकी के

राम नाम साधना का सिद्यी काल

राम के हृदयमें स्थान अब

पाऐगी बैदेही।

राजा जनक का यज्ञ स्थल

(जनकराज, शतानन्द, अन्यान्य राजागण, ब्राह्मणगण, ऋत्विकगण, मंत्रीगण)

जनक - हे उपाध्यायगण! और कितने दिन बचे है देवताओं के हविर्भोग ग्रहण करने में?

प्रधान - महाराज! आप की दीक्षा का और बारह दिन मात्र शेष बच रहा है, उसके बाद देवतागण हविर्भोग ग्रहण करने हेतु यहाँ आगमन करेंगे।

(एक द्वारपाल का प्रवेश)

क्षक - महाराज! विश्वामित्र मुनि का आगमन हुआ है (जनक राज पुरोहित और अन्यान्य ऋत्विकगणों सहित हाथ में अर्घ्यलेकर आते हैं और दण्डायमान होते हैं)

जनक - आइए, आइए मुनिवर आइए, आज आप के दर्शन से कृतार्थ हुआ। ये आसन ग्रहण करें। कृपया अर्घ्य ग्रहण करें (अर्घ्यदान)

विश्वामित्र - (अर्घ्य प्रतिग्रह करते हुए) आप का आपके राज्य का सब कुशल-मंगल तो है? यज्ञ का सब कुशल तो है?

जनक - हे मुनिवर सब कुशल है। आपकी तपस्या और ध्यान कुशल पूर्वक चल तो रहे हैं?

विश्वामित्र - सब मंगल है (ऋत्विकगण और पुरोहितगणों के प्रति) आपलोग सब कुशल तो है?

ब्राह्मणगण - हाँ सब कुशल है।

जनकराज - (कृतांजलि) हे भगवन्! आप आसन ग्रहण करें।

विश्वामित्र - हाँ महाराज (आसन ग्रहण करते हैं)

जनक - हे ब्राह्मण! आज आपसवों का दर्शन कर धन्य हुआ। हमारा यज्ञ सफल हुआ, जिस हेतु आपलोग मुनिगणों सहित यज्ञ में आए हैं। देवताओं के हविर्भोग ग्रहण के लिए और बारह दिन शेष बचे हैं, आप लोग कुछ दिनों यहाँ अवस्थान कर उनका दर्शन करें।

विश्वामित्र - राम-लक्ष्मण। तुमलोग इन समस्त ब्राह्मणों को तथा राजा जनक को प्रणाम करो।

(श्री राम और लक्ष्मण मुनिगण तथा राजा जनक को प्रणाम करते हैं)

जनक - वेटे! तुम दोनों चिर कुशली होओ। (विश्वामित्र के प्रति) है मुनिवर! देव कुमार की भाँति प्रभासम्पन्न ये दोनों पुत्र किनके हैं? अंग की ज्योति से दिशाओं को उद्‌भासित करते हुए चन्द्र सूर्य की भाँति विराज रहे हैं, ये मनभावन कुमार दोनों सूर्य-वरूण हैं अथवा नरनारायण?

विश्वामित्र - राजन! ये दोनों बालक अधोध्यापति राजा दशरथ नन्दन हैं। नवदुर्वादल कांति सम्पन्न बालक जेष्ठ है इसका नाम राम है और तपे हुए सोने के समान रंग वाला बालक कनष्ठि है इसका नाम लक्ष्मण है। यज्ञ रक्षा करने हेतु मैं अयोध्या जाकर दोनों को मांग लाया। आते समय रास्ते में राम ने विश्वघातिनी ताड़का को एक वाण में ही मार डाला। इसके बाद सिद्याश्रम में यज्ञ रक्षा का भार इन पर सौंप कर हमने यज्ञ आरंभ किया। सुबाहु प्रमथ आदि राक्षसों का बध कर राम ने ताड़का पुत्र मारीच को वाणों के आघात से समुद्र में पहुँचा दिया। हमारा यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न हुआ, मैं आप के घर शिवधणुष देखने के लिए इनको लेकर आया हूँ। रास्ते में पति के श्राप से शापित पाषाण बनी गौतम पत्नी अहिल्या को राम ने अपने पाद पंकज के स्पर्श से शाप मुक्त कर मानवी रूप प्रदान किया।

शतानन्द - मुनिवर, मुनिवर! आपने मेरी माता को देखा तो था ना? मेरी माता ने श्री रामचन्द्र की यथायोग्य पूजा तो की थी ना? पूर्वकाल में दुर्देववस जो घटना घटी थी उसका वर्णन आपने श्री राम से किया था ना? मेरी माता-पिता जी के द्वारा गृहीता तो हुई ना?

विश्वामित्र - मुनिश्रेष्ठ! सारे कर्तव्य ही पूरे किए गए। आपकी माता ने शाप मुक्त होकर यथोचित श्री रामचन्द्र की पूजा की। श्री रामचन्द्र ने उन्हें यथायोग्य सम्मान दिया। आपके पिता ने आपकी माता को सादर ग्रहण

किया। आप की माता राम का चरण स्पर्श कर समस्त पापों से मुक्त होकर प्रातः स्मरणीया हो गईं। प्रातः काल को जो नर-नारीगण कठोर तप परायणा अविराम राम नाम कारिणी राम के ध्यान में तत्पर, तुम्हारी माता का पवित्र नाम उच्चारण करेगा उनका समस्त पाप तत्तक्षण नष्ट हो जायेगा। वह राम-भक्ति प्राप्त कर कृतार्थ होगा।

शतानन्द - ऋषिवर! आज आप के श्रीमुख से माता की पाप-मुक्ति की कथा सुन कर प्राण आनन्दित हुआ। हे राम! ये जो मुनि-श्रेष्ठ विश्वामित्र को देख रहे हैं, ये तपस्या की मूर्ति हैं इनकी चरित्र गाथा सुनने से मनुष्य कृतार्थ होगा। इन्होंने तपोवल से विविध कल्पनातीत कर्म सम्पादन किए है, ये हैं जगत के परम हितैषी। राम आपके समान इस पृथ्वी पर कोई भाग्यशाली नहीं; इसी कारण ये महातपस्वी कौशिक-पुत्र आपके रक्षक हुए हैं। इन्होंने तपोबल से राजा त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग पहुँचाया था। दक्षिण दिशा का अवलम्वन कर, दक्षिण मार्गस्थ दूसरा सप्तर्षिमण्डल सत्ताइस नक्षत्र की श्रृष्टि इन्होंने की थी। इनकी तपस्या से भयभीत होकर इन्द्र ने एक वार मेनका को और दूसरी बार रम्भा को तपस्या भंग करने के लिए भेजा था। इनके शाप से रम्भा दस हजार वर्षों से पत्थर बन कर खड़ी है। इनकी दारूण तपस्या से त्रिलोकपीड़ित हुआ। देवगणों के साथ ब्रह्मा उपस्थित हुए और इनका प्रार्थित ब्राह्मण्य पद दान किया।

राम - ब्रह्मर्षि की अपूर्व कथा सुनकर कृतार्थ हुआ।

विश्वामित्र - हे राजन श्री रामचन्द्र आप के गृह स्थित शिव-धणु के दर्शनों को आए हैं, आप धणुष प्रदर्शन कराएं।

जनक - मंत्रीगण, धणुष मंगवाने की व्यवस्था करें। (मंत्री का गमन)

जनक - हे मुने, श्री राम यदि इस धणुष को उठाकर चाप राम को चढ़ाने में समर्थ होते हैं तो मैं अपनी कन्या सीता को दान करूंगा। समस्त राजाओं का माननाशक यह धणुष जो उठाकर चाप चढ़ाएगा, उसके साथ मैं सीता का विवाह करूंगा; ऐसा प्रण मैंने किया है।

विश्वामित्र - शिवधणु आपने कैसे प्राप्त किया? और प्रण लेने का कारण क्या है?

जनक - दक्ष का यज्ञ ध्वंस करने के उपरांत महेश्वर ने ही यह धणुष देवताओं को दिया। देवताओं ने हमारे पूर्वज देवरात के पास धरोहर के रूप में इसे रख छोड़ा। एक दिन यज्ञभूमि शोधण करने के उद्देश्य से मैं भूमि जोत रह था, उसी समय हल के

फार से अयोनिजा कन्या सीता मुझे मिली। सीता क्रमशः बड़ी हुई। सीता का विवाह किसके साथ करूंगा, ऐसा विचार कर मैंने इस शिव-धणु का प्रण ठान लिया कि जो कोई इस धणुष पर ज्या रोपन करेगा यानि धणुष को उठाकर चाप चढ़ाएगा उसके साथ ही मैं सीता का विवाह करूंगा। यह बात सुनकर नाना देशों के राजागण आए तथा धनुष उठाने की चेष्टा की और असफल हो, निराश होकर लौट गए इसीलिए मैंने उन सबों को अल्प बीर्य आदि की संज्ञा दी। इसके बाद राजागण अत्यंन्त कुपित हुए और मिथिलापुरी का अवरोध कर उत्पात करने लगे। सम्बत्सर काल इसी प्रकार मिथिला पुरी का मार्ग अवरोध करने के फलस्वरूप हमारे सारे युद्योपकरण (युद्ध करने के हथियार, शस्त्र) नष्ट हो गए खत्म हो गए। मैं दुःखी होकर तपस्या करने लगा। मेरी तपस्या से प्रसन्न होकर देवताओं ने मुझे चतुरंगिनी सेना प्रदान की। अन्ततः सारे नृपतिगण परजित होकर पालायन कर गए। यदि दशरथ पुत्र राम इस धणुष पर प्रत्यंचा चढ़ा पाने में समर्थ होते हैं तो मैं अपनी अयोनिजा कन्या सीता को राम को समर्पित करूंगा।

विश्वामित्र - आप राम को धणुष दिखलाएं। (अष्टचक्र से युक्त मंजूषा पर रखे धणुष को पांच हजार बलशाली बाहकों ने लाया)

मंत्री - महाराज धणुष मंगवाया गया।

जनक - हे ब्राह्मण, यह श्रेष्ठ धणुष जनकवंशीगणों तथा इसको उठाने में असमर्थ राजागणों के द्वारा पूजित है। मुनिपुंगव! मानव तो दूर की बात है, देव, दानव, गन्दर्भ यक्ष, रक्ष, किन्नर, उरगगण भी इसी हिलाने, उठाने अथवा प्रत्यंचा चढ़ाने अथवा टंकार देने में भी सफलन हो सके। आपकी अनुमति से यह धणुष इन राजकुमारों को दिखलाने के लिए मंगवाया गया है।

विश्वामित्र - वत्स राम! इस धणुष का दर्शन करो। *(श्री रामचन्द्र मंजूषा के निकट जाकर धणुष का दर्शन करते हैं)*

श्री राम - देव! अनुमति प्रदान करें, मैं इस दिव्य धणुष को स्पर्श करूं एवं उठाने तथा ज्या रोपण करने का यत्न करूं!

विश्वामित्र व जनक - उत्तम, आप धणुष ग्रहण करें (श्री रामचन्द्र बाँए हाथ से धणुष के मध्यभाग को पकड़ कर उठाते हैं और पलक झपकते प्रत्यंचा चढ़कार ज्यों ही टंकार देते हैं कि धणुष के दो टुकड़े हो गए, पर्वत विदीर्ण हो गया और पृथ्वी कम्पायमान

हो उठी। धणुष के गुंज से विश्वामित्र, जनक, लक्ष्मण और राम को छोड़ कर बाकी सभी लोग मोहग्रस्त हो गए, देव दुन्दुभि बजाने लगे, राम के ऊपर पुष्प वर्षन करने लगे, कुछ एक क्षण पश्चात सभी आस्वस्त हुए। अन्तःपुर के गवाक्ष जाल से स्त्रियों की मंगलध्वनि उठने लगी)।

जनक - भगवन! मैंने दाशरथ-नन्दन राम की वीरता का दर्शन किया। इस दिव्य धणु पर चाप चढ़ा सकेंगे, ऐसी मैने कल्पना भी नहीं की थी, यह एक अचिन्तनीय परम आश्चर्य जनक घटना है। मेरी पुत्री सीता दशरथ -पुत्र राम को पतिरूप में प्राप्त कर जनक के कुल की कीर्ति बढ़ाएगी, इसमें कोई संदेह नहीं है। आज मेरी प्रतिज्ञा सत्य हुई, मैं राम को अपनी प्रियतमा पुत्री जानकी दान करूंगा। मंत्रिन् सीता को यहाँ लाने के लिए अन्तःपुर में संवाद पाठाएं। (मंत्री का गमन)। हे मुनिश्रेष्ठ! शीघ्रातिशीघ्र अयोध्या पत्र भिजवाएं। राजा दशरथ गुरु, पुत्र, पत्नी और मंत्रीगणों के साथ शीघ्र मिथिलापुरी आगमन करें। *(सखियों के साथ सीता स्वर्णमयी माला हाथों में लेकर कंपितपग से धीरे-धीरे प्रवेश करती है)*

जनक - बेटी जानकी! ये हैं दशरथ-पुत्र राम, शिवधणुष भंग किया है, ये हैं तुम्हारे स्वामी, इनके गले में माला डालो। (सीता सलज्जभाव से खड़ी रहीं)

जनक - पुत्री, तुम हो क्षत्रिय कन्या, यह स्वयंवर सभामध्य वरमाला दान हमारा चिरप्रचलित नियम है, लज्जा का कोई प्रयोजन नहीं, तुम वरमाला पहनाओ।

सीता दोनों हाथों से जय-माला ले कर रामचन्द्र के गले में अर्पण करने के लिए मुख की ओर देखती हैं; दोनों के नयन आपस में मिल गए। स्त्रियाँ शंखध्वनि, मंगलध्वनि करने लगीं, स्वर्ग से देवताओं ने पुष्पवर्षण किए, सभागार में उपस्थित जनगण का आनन्द-कोलाहल होनेलगा।

चित्ताकाश - जीवात्मा और मन

जीवात्मा - अहो सखे, देखकर
राघव का मुख सुधाकर
जानकी का नयन चकोर
कर रहा है सुधापान
सुध बुध खोकर।

मन - हाय, हाय।
कितना सुन्दर कितना मनोहर
चाँद को देखूं कि चकोर को निहारूं
समझ नहीं आता कुछ भी।
सहस्त्र नयन यदि देते विधाता
दरश पिपाशा मेरी
मिटती किंञ्चित।

क्रमशः

"जीवेम शरदः शतं"

-स्व. जयकृष्णा झा

इस संसार में मनुष्यों की जीवन-रेखायें समरूप नहीं है। सबकी जीवन-रेखायें आसमान रूप से छोटी-बड़ी हैं। कुछ जातक जन्म-प्राप्ति के साथ-साथ सुबह के चिराग हो जाते हैं। कुछ अल्पायु में ही किसी-न-किसी कारणबस काल कवलित हो जाते हैं। कुछ अकाल मृत्यु के शिकार होते हैं-आत्म हत्या द्वारा या दुर्घटनाग्रस्त होकर। कुछ दीर्घ जीवी होते हैं जो लम्बे जीवन-काल तक लगभग 80 वर्षो की आयु प्राप्त कर जीवन-यापन करते हैं। कुछ पूर्णायु को प्राप्तकर शतक बना लेते हैं या उससे भी अधिक काल तक जीते हैं। तदुपरान्त कुछेक चिरंजीवी या कालजयी भी होते हैं जिनकी कोई उम्र-सीमा नहीं होती है। ऐसे कालजयी जन्मोपरान्त फिर कभी मरते ही नहीं हैं और देव-कोटि में समाहित होकर अमरता को प्राप्त कर लेते हैं। इस श्रेणी में वे ही ऊँगलियों पर गिनेजाने वाले हैं, जो सर्वशक्तिमान परम पिता परमेश्वर के वरद प्रिय पात्र हैं। ऐसे चिरंजीवी या कालजयी का उल्लेख निम्नलिखित श्लोक में इस प्रकार है-

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनुमांश्च विभीषणः।
कृपः परशुरामश्च चिरजीविनः॥

उपरोक्त उल्लिखित सात नामों के अतिरिक्त भी कालजयी की सूची में सनत्कुमार (सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार) मार्कण्डेय, लोमस, जाम्बवान और प्रह्लाद की गिनती की जाती है।

अल्प-जीवन, दीर्घ जीवन, पूर्ण-जीवन तथा चिरकालिक-जीवन की पृष्ठभूमि इतनी व्यापक हैं कि वह अपने दामन में अंतरिक्ष के अपरिमेय विस्तार को, सागर की गहराई को, भविष्य की अदृश्यता को तथा प्रारब्ध के रहस्य को छिपाये रखती है। यह हमारे ज्ञान के परे ईश्वराधीन बात है। इस प्रकार के विभिन्न कालिक जीवन के अनेकानेक कारण हैं जिनके तार जातक के जन्म-जन्मान्तर के अर्जित फल, वर्तमान जीवन के क्रियमान कार्यो के फल तथा भविष्य के अदृश्य का समेकित रूप से प्रभावित फल है। यही हमारे लघु या विस्तृत जीवन होने की आधारशिला है, जो विधाता को जीवन-दान करने में सहायक सिद्ध होती है। विधाता द्वारा प्राप्त जीवन काल का वर्तमान जीवन में उसकी क्रियमानता के आधार पर योग या क्षय दोनों ही हुआ करता है। जीव की आयु का निर्धारण विधाता करते हैं लेकिन इसमें उनकी मनमानी नहीं रहती है। निर्धारण कर्म के आधार पर होता है। हमारी जीवन-शैली पर भी हमारी आयु निर्भर करती है। ईश्वर की कृपा का स्थान सर्वोपरि है। इस प्रकार आयु का विवेचन अपने आप में एक गंभीर विषय है जो आध्यात्मिक और सांसारिक सूत्रों से जुड़ा हुआ है।

महर्षि भृकंडु के पुत्र मार्कण्डेय थे, जिन्हें विधाता से मात्र 10 वर्षो की सीमित अल्प आयु

प्राप्त थी। उन्होंने शंकर भगवान की दृढ़ भक्ति द्वारा अमरता प्राप्त कर ली। यह सर्व विदित है कि "भावी मेटि सकहिं त्रिपुरारी"। भगवान व्यासदेव का वचन है कि-

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसिविनं।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुविद्या यशोवलं॥

इससे यह स्पष्टतः प्रमाणित होता है कि ईश्वर की दृढ़ भक्ति और उनकी कृपा से आयु का विस्तार संभव है। इसके विपरीत आयु की क्षीणता का नंगा नृत्य हम अपनी आँखों के सामने असंख्य रूप में प्रतिदिन देखा करते हैं। स्वास्थ्य के नियमों का उल्लंघन करनेवाले व्यक्ति अनेकानेक घातक बीमारियों का शिकार होकर क्षीण आयु को प्राप्त होते हैं और अकाल ही काल के मुँह में प्रविष्ट होते हैं। इस प्रकार भाग्यहीन व्यक्ति विधाता से प्राप्त वरदान को भी अक्षुण्य नहीं रख पाता और अपनी आयु को अपने ही हाथों से लुटा देता है।

ययुर्वेद के मंत्रों में संक्षेप से तथा अथर्ववेद के सूत्रों में विस्तार से मनुष्य की पूर्ण आयु का विवेचन प्राप्त है। ययुर्वेद के मंत्रों में मनुष्य की पूर्ण आयु एक सौ वर्षों की या उससे भी अधिक मानी गयी है। इन सौ वर्षों या उससे भी अधिक काल तक मनुष्यों द्वारा सकुशल स्वस्थ और सम्पन्न जीवन यापन करने हेतु ययुर्वेद में ऋषियों ने त्रिष्टुप छंद में जीवन-रक्षक भगवान से प्रार्थना द्वारा याचना की है। ऋषि द्वारा इन मंत्रों से प्रार्थना और याचना तथा मनुष्य द्वारा इन मंत्रों की तदनुसार कामनायुक्त अवधारणा तथा स्तुति अक्षुण्ण जीवन-यापन में हमारे लिए निश्चय ही बहुत महत्वपूर्ण है।

सर्वप्रथम हम यहाँ ययुर्वेद के पूर्णायु से सम्बन्धित मंत्रों को हृदयंगम करने का प्रयास करेंगे। मंत्र संख्या 1432/21-22 में ऋषि-गोतम ने त्रिष्टुप छंद द्वारा विश्वेदेवा से मानव कल्याण हेतु उनकी पूर्णायु निमित्त प्रार्थना की है:

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं
पश्येमाक्षभिर्यजन्नाः।
स्थिरेरङैस्तुष्टुवां सस्तनूभर्व्यशेमहि देव हितं
यदायुः ॥ 21।

(हे देवताओं! हम सदैव कल्याणकारी वचनों को ही अपने कानों से सुनें, नेत्रों से सदैव कल्याणकारी दृश्य ही देखें। हे देव! परिपुष्ट अंगों से युक्त सुदृढ़ शरीर वाले हम आपकी वन्दना करते हुए पूर्ण आयु तक जीवित रहें।)

शतभिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा
जरस तनूनाम्।
पुत्रासो यत्र पितरा भवन्ति मा नो मध्या
रीरिषतायुर्गन्तो॥

(हे विश्व के स्वामी! पुत्र-पौत्रों से युक्त सुदृढ़ वृद्धावस्था होने तक, सौ वर्षों तक हम पूर्ण जीवन सुख पूर्वक जिएं। जीवन के मध्य में हम कभी मृत्यु को प्राप्त न हो।)

पुनः ययुर्वेद की ही मंत्र संख्या 1896/24 में ऋषि आथर्वण ने त्रिष्टुप छन्द द्वारा सूर्यदेव से मानव हेतु उनकी पूर्णायु के निमित्त प्रार्थना की है:

पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदःशतं शृणुयाम शरदः शतं

पब्रवाम शददःशतं अदीनाःस्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।

(हे जगत-प्रकाशक और जीव की आँखों में ज्योति के प्रदाता सूर्यदेव! हम आपकी सहायता से सौ वर्षों तक देखें, सौ वर्षों की पूर्ण आयु प्राप्त करें, सौ वर्षों तक कानों से सुनें, सौ वर्षों तक मधुर तथा उत्तम वाणी बोलें, सौ वर्षों तक बिना पराश्रित हुए स्वावलम्बी जीवन जिएँ तथा शरीर के सभी अवयवों के क्रियाशील और अक्षुण्यवस्था में रहने पर सौ वर्षों से अधिक समय तक भी जीवन धारण करें। पराश्रित और दुखद जीवन जीने से तो मृत्यु को गले लगाना ही श्रेयस्कर है। नारकीय जीवन जीने से मृत्यु ही श्रेष्ठ है क्योंकि ऐसा जीवन अर्थहीन है।)

उपरोक्त ययुर्वेद के मंत्रो की चर्चा के पश्चात् अब हम यहाँ इस विषय पर आगे अपने को अथर्ववेद में उल्लिखित दीर्घायु एवं पूर्णायु से सम्बधित सूत्रों से आलोकित करेंगे। इन सूत्रों के ऋषि स्वयं ब्रह्मा हैं और उन्होंने मानव के हितार्थ उनकी दीर्घ आयु और पूर्णआयु निमित्त प्राजापत्य गायत्री छंदो द्वारा जीवन-रक्षक सूर्य देव से प्रार्थना की है। मानव-जीवन में इसकी अवधारणा हितकर है।

5004. **पश्येम शरदः शतम्।** (हम सौ वर्षों तक इन आँखों से देखें)

5005. **जीबेम शरदः शतम्।** (हम अपना यह जीवन सौ वर्षों तक जिएं)

5006. **बुध्येम शरदः शतम्।** (हम इस जीवन में सौ वर्षों तक ज्ञानवान बने रहें अर्थात् हमारी बुद्धि विभ्रमित न हो।

5007. **रोहेम शरदः शतम्।** (हम सौ वर्षों तक निरंतर अपने जीवन में वृद्धि करते रहें)

5008. **पूषेम शरदः शतम्।** (हम सौ वर्षों तक परिपुष्ट रहें)

5009. **भवेम शरदः शतम्।** (हम सौ वर्षों तक सखा-संतान सहित कुशल-क्षेय से रहें)

5010. **भूयेम शरदः शतम्।** (हम सौ वर्षों तक भलीभाँति सफलता के साथ जिएं)

5011. **भूयसी शरदः शतात्।** (ऊपर की सभी शर्तो की परिपक्कता की अवस्था में हम आगे और सौ वर्षों से भी अधिक जिएं)

पुनः अथर्ववेद में ही ब्रह्म ने ऋषि रूप में अनुष्टुप छंदों द्वारा जीवन रक्षक आपः देव से मानव हित में प्रार्थना की है जिसकी अवधारणा हमारे लिए सर्वथा अपेक्षित है।

5013. **जीवास्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम्।** (हे देव! आप आयुसम्पन्न हैं। हम भी आयुषमान हों और पूर्वायु सौ वर्षों तक जीवित रहें)

5014. **उपजीवा स्थोप जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्या सम्।** (आप दीर्घ आयु से युक्त हैं, हम भी दीर्घायु सम्पन्न हों और सम्पूर्ण आयुपर्यन्त जिएं)

5015. **संजीवास्थ सं जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्या सम्।** (आप श्रेष्ठ जीवन यापन करने वाले हैं। हम भी श्रेष्ठ जीवन यापन करें और सम्पूर्ण आयु तक जिएं)

5016. जीवलास्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम्। (आज जीवन युक्त है, हम भी जीवन सम्पन्न रहें और पूर्ण आयु तक जीवन धारण किए रहें)

इस प्रकार जीव ईश्वर-अंश होने के नाते उनके समानान्तर जीवन-यापन करने को आकांक्षी हैं।

अंततः अथवर्वेद के ही पूर्णायु प्रसंग में मात्र एक ही सूक्त से ब्रह्म ने ऋषि रूप में त्रिपदा गायत्री छंद द्वारा इन्द्रदेव, सूर्य देव तथा अन्यान्य देवों को समेकित ढंग से मानव कल्पाणार्थ संक्षेप में प्रार्थना की है जो निम्न लिखित है:

5017 इन्द्र जीव सूर्य जीव, देवा जीवा जीव्या समहम् सर्वमायुर्जीव्यासम्।।

(हे इन्द्रदेव! आप जीवन युक्त रहें। हे सूर्यदेव! आप जीवन सम्पन्न रहें तथा हे अन्यान्य देवगण! आप सभी जीवन्त रहें। आप के साथ-साथ हम भी समानान्तर रूप से पूर्णकालिक जीवन धारण करें।

निष्कर्षतः संसार में साधारणतः देखा जाता है कि मनुष्य पूर्ण जीवन जीने की अवधारणा संजोये रहता है। पूर्ण जीवन सिर्फ एक सौ वर्षो या इससे न्यूनाधिक लम्बी आयु मात्र से अर्थ नहीं रखता है। पूर्ण जीवन की इस अवधि में शरीर के सभी अवयवों के स्वस्थ और क्रियाशील रहने का भी भाव छिपा हुआ है। चौथेपन में भी जीवन पराश्रित न होकर स्वावलम्बी बना रहना चाहिए। जीवन में पूर्ण आस्था, भक्ति और ईश्वर के प्रति कृतज्ञता का भाव कूटकूट कर भरा होना चाहिए। जीवन पूर्णतः सम्पन्न हो, विपन्न नहीं। जीवन सर्व भावेन परिपूर्ण, सुखद और संतुष्ट होना चाहिए। भगवान ने यह जीवन सुख के लिए दिया है, दुख के लिए नहीं। दुख के कारण तो हम स्वयं होते हैं, पर दोष विधाता को देते हैं। यहाँ कामना-रहित, एक परितुष्ट और आदर्श जीवन की परिकल्पना की गई है। नारकीय जीवन जीने से मृत्यु श्रेयस्कर और वरेण्य है। ऐसे ही पूर्ण जीवन के लिए वेद के मंत्रों, सूक्तों और ऋचाओं से प्रार्थना और याचना की गयी है। ऐसे जीवन की कामना और अवधारणा पूर्ण जीवन को सही अर्थ में व्याख्यायित करता है। हम वेद भगवान को ''जीवेम शरदःशतं'' के पूर्ण समर्पण के साथ नमन करते हैं।

''उद्यवजी से भगवान श्री-कृष्ण के उपदेश''

जबतक सारा शरीर पुलकित नहीं हो जाता, चित्त पिघलकर गदगद नहीं हो जाता, आनन्द के आँसू आँखों से छलकने नहीं लगते तथा अन्तरंग और बहिरंग भक्ति की बाढ़ में चित्त डूबने-उतराने नहीं लगता, तबतक इसके शुद्ध होने की कोई सम्भावना नहीं है।

''श्री मद्‌भागवत''

(राधा कृष्ण)

कर्म बन्धन व मुक्ति

-किंर पृथ्वी सिंह पालकथा

श्री भगवान ने कहा कि क्या कर्म है और क्या अकर्म, इस प्रकार इस विषय में विवेकीगण भी मोहित रहते हैं, इसलिए जिसे जानकर तुम बहुदर्शन रूपी पाप से मुक्त होंगे, उसे तुम्हें सर्वतोभाव से कहूँगा।

अशुभ का अर्थ बहुदर्शन है न? हाँ एक मात्र ओंकारमयी महाशक्ति नाना रूपों में लीला कर रही है, उन्हें न देखकर पशु, पक्षी वृक्ष-लता को देखना ही अमंगल है। शास्त्रविहित कर्मो के भी ज्ञातव्य तत्त्व हैं एवं शास्त्र निषिद्ध कर्मो का स्वरूप भी जानना आवश्यक है तथा अविहित मामलों वाले अकर्म के तत्त्व भी बोद्धव्य हैं, क्योंकि कर्म के वास्तविक तत्त्व दुर्बोध्य हैं।

विकर्म नौ हैं- मिथ्या कथन, परस्त्रीगमन, अभक्ष भक्षण, अगम्यागमन, उपेयपान, चौर्य, जीवहत्या, अकार्यानुष्ठान, बन्धुजनों के अकर्त्तव्य कार्य।

जो परमेश्वर आराधनारूपी कर्म विषय में अकर्म देखते हैं और विहित कर्म के अकरण में जो पुरूष प्रत्यवाय उत्पादकत्व हेतु कर्म देखते हैं, वे मनुष्यों में बुद्धिमान हैं, वे योगी हैं, सकल कर्मकारी हैं। जिनके सारे कर्म कामना एवं संकल्पशून्य हैं, ज्ञानीगण उस ज्ञान रूपीअग्नि द्वारा दग्धकर्मा मनुष्य को पण्डित कहा करते हैं। जो अप्रयत्न लाभ से (बिना प्रयास के स्वतः प्राप्त हुए पदार्थो से) संन्तुष्ट रहता है, जो शीत-उष्णादि द्वन्द के अतीत हो गया है जो पर श्री कातरता रहित अर्थात् जो इर्ष्या से रहित है ओर सिद्धि तथा असिद्धि में जो समभाव सम्पन्न है, ऐसा योगी कर्म करके भी (उनसे) बद्ध नहीं होता। निष्काम ज्ञान में अवस्थित चित्त, परमेश्वर की आराधना के लिए कर्मकारी मुक्त पुरूष के समस्त कर्म अच्छी तरह से विलीन हो जाते हैं।

काम संकल्पशून्य होकर कर्म करने से कर्म का बन्धन नहीं होता, चित्त शुद्ध होता है; किन्तु काम संकल्पशून्य होने के उपाय क्या है? अतिसहज सरल उपाय है, सर्वदा नाम का जप करना। जो नाम जप करते हैं, उन्हें और किसी भी तरह की चिन्ता नहीं करनी चाहिए; श्री भगवान उनका भार स्वयं ग्रहण कर लेते हैं। गुणज्ञ सारग्राही सज्जन कलि का सम्मान करते हैं क्योंकि इस युग में मात्र संकीर्त्तन के द्वारा ही मानव सभी स्वार्थ लाभ करने में समर्थ होता है। यह सत्य है, परम सत्य है, यही श्रेष्ठ ज्ञान है, यही परम तपस्या है, वासुदेव का कीर्त्तन ही परम तत्त्व है। एक मात्र ही परम तत्त्व है-नाद ओंकार। उसी नाद से विश्व मण्डल परिपूरित है। सभी के भीतर-बाहर वही नाद स्पंदन है, प्राण स्पंदन ही घनीभूत होकर विविध पदार्थो के रूप में नयन गोचर हो रहा है। कीर्त्तन के द्वारा किस प्रकार से मनुष्य कृतार्थ होता है इसका अब श्रवण कराया जा रहा है। नारद मुनि ने भगवान विष्णु से कहा था "आप भी साक्षात ब्रह्म" हैं। संगीत भी साक्षात

ब्रह्मस्वरूप है। आप दोनों का सम्मिलन एक बार देखने की इच्छा हो रही है।'' श्री भगवान ने इसके उत्तर में कहा –'नारद! यथाविधि संगीत होने पर त्रिलोक मुग्ध हो जाते हैं। संगीत में जो सारे पदनिचय व्यवहृत होते हैं वे सारे पदार्थ के वाचक है, उनमें कोई भी पदार्थ का ज्ञापक नहीं है। उन पदावलियों में स्वर पड़ने पर वे रस पूर्ण हो उठती है। मूलाधार में जो अग्नि है उससे ही नाद उत्पन्न होता है। वही नाद क्रमशः नाभी आदि पंचस्थानों को भेदकर मस्तक में जाकर प्रस्फुटित हो जाता है। वह पहले मूलाधार में उत्पन्न होकर नाभि में अति सूक्ष्म हृदय में सूक्ष्म, कण्ठ में अव्यक्त एवं मुख में किंचित, व्यक्तरूप में प्रकाश पाकर मस्तक में अव्यक्त होता है, नाद इस प्रकार है।''

प्रकृत संगीतज्ञ गण जब राग-रागिणियों के अलाप करते हैं, तब ये राग-रागिणियां मूर्ति धारण कर प्रगट होती हैं। राग-रागिणियों की दासियां एवं रागों के अपने-अपने दास हैं। कुल मिलाकर 83 राग-रागिण्यिां हैं। इनके मिश्रण से अनन्त प्रकार की राग-रागिणियां उत्पन्न हुई है।

देह में जब वायु प्रवेश करती है तो दश अङ्गुल रहती है, जब बाहर निकलती है तब द्वादश अंगुल होती है, यही स्वाभाविक है। द्वादश अंगुल से अधिक होने पर समझना चाहिऐ कि क्षय प्रारंभ हो गया है। संगीतकाल में सांस षोड़स अंगुल, भोजनकाल में बीस अंगुल, पथ चलते समय चौबीस अंगुल, निद्रा में तीस अंगुल, मैथुन के समय छत्तीस अंगुल, व्यायाम के समय उससे भी अधिक होती है। जों जितना इन्द्रियों के अधीन होता है उसकी उतनी ही अधिक क्षति होती है अर्थात् उसका श्वास क्षय अधिक होता है। क्षय, क्षय को लाता है, स्त्री संग से अधिक क्षय होता है इसलिए सारे शास्त्र सर्वत्र एक स्वर से कहते हैं कि देह स्वास्थ्य, आयु की रक्षा के लिए ब्रह्मचर्य की रक्षा का विशेष प्रयोजन है। अब्रह्मचारी श्री भगवान से बहुत दूर रहता है। अविरत काम स्पंदन उसे नीचे की ओर लिए दौड़ता है। उसके लिए बकरी की योनि सन्निकट हो जाती है। इससे रक्षा करने के उपाय है। चिदानन्दघन नाम कीर्त्तन के द्वारा उसकी यह गति भिन्नमुखी होकर नाद में आसक्त हो जाती है। श्वास की गति में कमी आने पर मनुष्य दिन पर दिन परमानन्द धाम की ओर अग्रसर होने लगता है। एक उंगली प्राण की गति कम होने से निष्कामता आती है, दो उंगली कम होने से आनन्द, तीन उंगली कम होने पर कवित्व की शक्ति, चार उंगली से वाक्य सिद्धि, पंचम से दूरदृष्टि, षष्ट से आकाश गमन, सप्तम चण्ड वेग, अष्ट उंगली कम होने पर अष्ट-सिद्धि लाभ होती है। नवम से नव निधि, दशम से दशमूर्ति, एकादश से छाया नाश, द्वादश से हंसाचार और सर्वदा स्हस्त्रारगलित सुधापान से भक्षण करने का कोई प्रयोजन नहीं रहता। काल भी उसका भोजन करने में समर्थ नहीं होता।

संगीत से मन, चित्त की शुद्धि होती है, जिससे निष्काम कर्म करने की प्रवृत्ति बढ़ती है। श्रेष्ठ है ब्रह्मार्पण! मैं कर्त्ता नहीं हूँ, यह सब ओंकार ब्रह्म ही कर रहे हैं। तत्त्वदर्शी ऋषिगणों ने इसे ओंकार ब्रह्मापर्ण कहा है। इस कर्म द्वारा भगवान सनातन ईश्वर प्रसन्न होते हैं, ऐसी बुद्धि से किये कर्मो के आचरण को श्रेष्ठ कहा जाता है।

फलदाता वही एक मात्र शुद्ध सच्चिदानन्दघन ओंकार हैं। जो भक्त सकाम, निष्काम अथवा शान्त, वात्सल्य, सख्य, दास्य, मधुरादि जिस किसी भाव से भी उनको भजते हैं वे उसी भाव से उस पर कृपा करते हैं। सभी को समस्त कर्मो के फलदाता केवल मात्र वो ही हैं। गुण व कर्मो के विभागों के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शुद्र ये चार वर्ण श्री भगवान के द्वारा रचित हुए हैं परन्तु श्री भगवान कहते हैं कि फिर भी उनको अकर्त्ता ही समझें। वो अकर्त्ता ही है।

गुण कर्म विभाग क्या हैं? ब्राह्मण सत्य प्रधान है, इनके कर्म शम, दमादि हैं। क्षत्रिय रज प्रधान है। इनके कर्म शौर्य, युद्धादि करना है। वैश्य रजस्तमः प्रधान है, कृषि वाणिज्य आदि इनके कर्म है। शुद्र तमः प्रधान है। तीनों वर्णो की शुश्रुषादि करना इनका कर्म है। इसी को गुण कर्म विभाग कहा गया है। इस सृष्टि के प्रति आसक्ति न रहने के कारण भगवान कर्त्ता होकर भी अकर्त्ता है।

सब वर्णो के लिए कलयुग में एक ही सरल साधन है कि वे भगवत नाम लें, जपें।

गंगा तीर दो कोस तक की भूमि 'क्षेत्र' कहलाता है। इस स्थान पर किए गए हर कार्य की गंगा में किए अनुष्ठान में गणना होती है। इस स्थान में जो निवास करते हैं वे स्वर्ग को गमन करते हैं तथा उन्हें मोक्ष मिलता है।

सीताराम (स्कन्धपुराण)

"गंगा महिमा"

-रूबी राय
रांची

गंगा भारतीय सभ्यता और संस्कृति की प्राणवन्त कहानी है। नारद पुराण, देवी भागवत् और भागवत् पुराण में गंगा का सांस्कृतिक और पौराणिक रूप का वर्णन है।

भगवती गंगा भगीरथ के कठिन तपस्या के पश्चात् पृथ्वी पर आयी। भगीरथ के प्रयत्न से उनके पूर्वजों के उद्धार के साथ ही सबके लिए वरदान बन गया, गंगा का पृथ्वी पर आना।

भगवती गंगा हिमालय से निकली है जो देवताओं की भूमि है, इसी कारण इन्हें देवसरि या देव नदी भी कहते हैं। मूलतः ये भगवान् विष्णु केपद-नख से निःसृत हैं। गंगाजी का नाम ब्रह्मद्रव भी है अर्थात ब्रह्म का द्रव। इन्हें ब्रह्मरस या ब्रह्मरसायन भी कह सकते हैं। भगवान् विष्णु (ब्रह्म) में से पहले निराकार थीं। पद-नख से निर्गत होने पर 'नीराकार' हो गयी। इस प्रकार 'ब्रह्म' ही द्रवित होकर 'गंगा' बने हैं।

गंगाजी का दर्शन गोविन्द का दर्शन है स्पर्श भी गोविन्द का है, मज्जन भी उन्हीं में है। पूजन, वन्दन, आरती और आचमन भी गोविन्द का ही है। मैथिल कोकिल विद्यापति ने तो यहाँ तक कहा है कि योग, जप, तप ध्यान आदि भी करने की क्या आवश्यकता है, मात्र गंगाजी में स्नान कर लेने भर से मानव जन्म कृतार्थ हो जाता है।

कि करब जप तप योगधिआने।
जनम कृतारथ एकही सनाने॥

धर्मशास्त्रों में, महाभारत एवं वायुपुराण में गंगा के विषय में अभिव्यक्त अनेक में प्रशस्तिजनक श्लोक इनकी महत्ता एवं पवित्रता का हर्क अभिज्ञान कराते हैं। महाभारत के वन पर्व एवं अनुशासन पर्व में अनेक श्लोकों में गंगा की महिमा का सविस्तार वर्णन है जिसका संक्षिप्तरूप में वर्णन यहां प्रस्तुत किया जा रहा है-

गंगा कुरूक्षेत्र के समान है हर जगह, मगर कनखल की विशेषता अलग है और प्रयाग राज की महिमापरम है। यदि कोई गंगा माता केनाम का भी स्मरण करता है तो वह समस्त पापों से मुक्त हो कर विष्णुलोक (शिवलोक) को प्राप्त कर लेता है। ऐसा 'पद्मपुराण' का वचन है-

गंगा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोक स गच्छति॥

जिस प्रकार अग्नि ईंधन को जला देती है उसी प्रकार कोई यदि सैंकड़ों पापकर्म करके, सैंकड़ों योजन दूर से भी 'गंगा' का उच्चारण भी करता है तो गंगा उन दुष्कृत्यों को उसी प्रकार जला देती है।

कृतयुग में सभी स्थल पवित्र होते हैं, त्रेता में पुष्कर सबसे अधिक पवित्र है, द्वापर में कुरूक्षेत्रएवं कलियुग में गंगा की विशेष महिमा है। जब गंगा में स्नान किया जाता है या गंगा जल ग्रहण किया जाता है तो सात पीढ़ियों तक कुल पवित्र हो जाता है।

सर्व कृतयुगे पुण्यं त्रेतायां पुष्करं स्मृतम।
द्वापरेऽपि कुरूक्षेत्रं गंगा कलियुगे स्मृता॥
पुनाति कीर्तिता पापं दृष्टा-मद्रं प्रयाच्छति।
अवगाढ़ा च पीता च पुनात्या सप्तम कुलम्॥
(वनपर्व)

गंगा स्नान के संदर्भ में पुराणों में भी विस्तार से चर्चा हुई है। स्कन्दपुराण (काशीखंड 27/129-131) में स्पष्ट रूप से अंकित है कि विशिष्ट दिनों में गंगा स्नान से विशिष्ट एवं अधिक पुण्य फल प्राप्त होते हैं। जेसे-साधारण दिनों की अपेक्षा अमावस्या पर स्नान करने से सौ गुना फल प्राप्त होता है, संक्रान्ति पर स्नान करने से सहस्रगुना, सूर्य या चन्द्र-ग्रहण पर स्नान करने से सौ लाख गुना और सोमवार को चन्द्र ग्रहण पर या रविवार को सूर्य ग्रहण पर स्नानकरने से असंख्य फल प्राप्त होता है। स्नान यदि शास्त्र-सम्मत तथा विधिविधान पूर्वक मन्त्रोच्चार के साथ किया जाय तो उसका फल द्विगुणित हो जाता है। धर्म शास्त्रों में यह स्पष्ट निर्देश है कि गंगाका आह्वान 'नमो नारायणाय" मन्त्र के साथ करना चाहिए। आप विष्णु के चरण से उत्पन्न हुई है, विष्णु भगवान् भी आपकी पूजा करते हैं। अतः जन्म से मरण तक किये गये समस्त पापों से मेरी रक्षा करें। हे गंगे, देवों में आपका नाम नन्दिनी और नालिनी भी हैं तथा आपके और भी अन्य नाम हैं यथा-दक्षा, पृथ्वी, विहगा, विश्वकाया, अमृता, शिवा, विद्याधरी, सुप्रशान्ता, शान्ति-प्रदायिनि देवसरी आदि स्नान करते समय इन नामों का उच्चारण करना चाहिए।

गंगा के समान कोई तीर्थ नहीं है-"न गंगासदृशं तीर्थम" (वनपर्व) वहीं उत्तम देश है जहाँ गंगा बहती है और वह तपोवन जहाँ गंगा पायी जाती है, उसे सिद्धक्षेत्र कहना चाहिए क्योंकि वह गंगातीर को छूता रहता है। वे जनपद एवं देश वे पर्वत एवं आश्रम जिनसे होकर गंगा बहती है, पूण्य का फल देने में महान् है।

ऐसी पावन पूनीत गंगा जो शिव जी के मस्तक पर मालती-माला के समान विराजमान हैं, उनकी महिमा का वर्णन किसी के लिए भी संभव नहीं है फिर भी श्रद्धालु भक्तों ने अपने भाव-पुष्प उनके चरणों में सादर समर्पित किए हैं। ऐसे आद्य शंकराचार्य ने गंगास्तुति कुछ इस प्रकार की है- **देवि सुरेश्वरी भगवति गंगे त्रिभुवनतरिणि तरलतरंगे। शंकर मौलि विहारिणि विमले मम मतिरास्तां तव पदकमले॥**

भागीरथि सुखदायिनि मातस्तव जलमहिमा निगमे ख्यात।
नाहं जाने तव महिमानं पाहि कृपामयि मामज्ञानम।

हे देवि गंगे। तुम देव देवगण की ईश्वरी हो

हे भगवती! तुम त्रिमुवन को तारनेवाली, विमल और तरल तरंगमयी! तथा शंकर के मस्तक पर विहार करनेवाली हो। हे मातः तुम्हारे चरणकमलों में मेरी मति लगी रहे। हे भागीरथि तुम सब प्राणियों को सुख देती हो। हे मातः वेद-शास्त्र में तुम्हारे जल का महात्म वर्णित है मैं तुम्हारी महिमा कुछ नहीं जानता। हे दयामयी मुझ अज्ञानी की रक्षा करो।

पुराणों में भी गंगा की महत्ता सुन्दर ढंग से प्रतिपादित है। जब गंगा का नाम श्रवण किया जाता है जब कोई इनके दर्शन की अभिलाषा करता है, जब इनका जल ग्रहण किया जाता है जब इनमें डुबकी लगाते हैं या जब इनकी स्तुति की जाती है तो गंगा प्रतिदिन प्राणियों को पवित्र करती है-

श्रुताभिलाषिता दृष्टा स्पृष्टा पीतावगाहिता।
या पावयति भूतानि कीर्तिता च दिनें दिने।
यैर्नाम योजनानां शतेष्वपि।
स्थितैरूच्चरितं हन्ति पापं जन्मत्र यार्जितम्॥

जो व्यक्ति चाहे या अनचाहे गंगा के पास पहुंच जाता है और मर जाता है, स्वर्ग जाता है, और नकर नहीं देखता। 'मत्स्यपुरण' में तो गंगा की प्रशस्ति इस प्रकार से उल्लिखित है कि पाप करने वाला व्यक्ति भी सहस्रोयाजन दूर रहता हुआ गंगा स्मरण से परम पद प्राप्त कर लेता है। काशी खंड में ऐसा वर्णन है कि गंगा के तटपर सभी काल शुभ है। सभी देश शुभ है और सभी लोग दान ग्रहण करने के योग्य हैं। पद्मपुराण (सृष्टिखंड में गंगा की मित्रों, पतित, दुष्ट, चांडालएवं गुरूधाती हो जाने पर या सभी प्रकार के पापों एवं द्रोहों से संयुक्त होने पर क्रम से पुत्र पत्नियां मित्र एवं सम्बन्धी उनका त्याग कर देते हैं मगर गंगा उन्हें परित्यक्त नहीं करती है।

गंगा कि विशेषता का प्रदर्शन जहाँ धर्मशास्त्रों में है वहीं इनके उद्‌गम एवं स्वरूपादि का भी उल्लेख है। भारतीय संस्कृति में 'ओंकार' शब्द जो ब्रह्मा का द्योतक है का बड़ा ही महत्व है समस्त मंत्र इस एक विराट शब्द में गर्भित है ओंकार में सरस्वती, यमुना तथा गंगा ये तीन नदियां समाविष्ट है। अ, उ, म् से विनिर्मित ओउम् में अ- सरस्वती, उ-यमुना तथा म्-गंगा का द्योतक है। और इन तीनों के जल क्रमशः प्रद्युम्न, अनिरूद्ध एवं संकर्षण हरि के प्रतीक माने गये हैं। वराह पुराण में गंगा की व्युत्पत्ति के लिए कहा गया है कि 'गा गता' अर्थात जो पृथ्वी की ओर गयी हो वे गंगा है।

पद्मपुराण में यह भी कहा गया है गंगा मन्दकिनी के रूप में स्र्वा में गंगा के रूप में पृथ्वी पर और भोगवती के रूप में पाताल में सतत् प्रवाहमान है। मत्यस्यपुराण ब्रह्मपुराण आदि में बताया गया है कि भगवान शिव ने अपनी जटाओं से गंगा को सात धाराओं में परिवर्तित कर दिया जिनमें तीन नलिनि, ह्वादिनी एवं पावनी पूर्व की ओर तीन सीता चक्षुस एवं सिन्धु पश्चिम की ओर प्रवाहित हुई और सातवीं धारा भागीरथी हुई इसी प्रकार कूर्म एवं वारापुराण में गंगा को सर्वप्रथम सीता अलकनन्दा, चक्षुस एवं भद्रा नामक चार विभिन्न धाराओं में प्रवाहित होना माना गया। अलकनन्दा दक्षिण की ओर बहती हुई भारतवर्ष की ओर आती है और सप्तमुखों में होकर अन्ततोगत्वा समुद्र में जा गिरती है। महाभारत में इन्हें त्रिपथगामिनी बाल्मीकि रामायण में त्रिपथगा और रघुवंश आदि काव्यों में त्रिस्रोता कहा गया है।

गंगा त्रिपथगा नाम दिव्या भागीरथीच।
पथो भावयन्तीति तस्मात् त्रिपथगा स्मृता॥

गोस्वामी तुलसीदास जी अनूठी कृति श्रीरामचरित मानस में प्रभु श्री रामचन्द्र जी का देवनदी के प्रति जिस श्रद्धा और अगाध प्रेम का

भाव दर्शाया गया है उसे देख कर तो हृदय द्रवित हुए बिना नहीं रहता। वास्तव में गंगा एवं श्रीरामचरित मानस मनुष्य को समानरूप से पुण्यलाभ का अवसर प्रदान कर आत्मतृप्ति आत्मोत्थान एवं आत्मशुद्धि का अवसर प्रदान करता है।

राम भक्ति जहां सुरसरि धारा।
सरसई ब्रह्मविचारप्रचारा।

यह प्रभु श्री राम के गंगा प्रेम का ही परिणाम है जो श्री राम कथा की गति को श्री गंगाजी के समान महिमामण्डित करता है क्योंकि दोनों के अवगाहन की गति भी तो एक ही है।

मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।
गति कूर कविता सरित की ज्यों सरित पावन नाथ की।

मातर्गंगे, मातर्गंग, मातर्गंगे

वाक्-संयम

ग्राम्यकथा ना सुनिवे, ग्राम्यकथा ना करिवे
भालना खाइवे आरमानवा परिवे
अमानी अमानद हैया कृष्ण नाम सदा लवे
व्रजे राधा कृष्ण सेवा मानसे करिवे

(श्री चैतन्य चरितामृत)

श्री चैतन्य महाप्रभु ने साधको को वाणी पर संयम रखने के लिए उपरोक्त उपदेश दिये। साधकों को यथाशक्ति मौन में रहना चाहिए; इससे उनमें देवी गुणों का विकास होता है। साधको को मितभाषी, हितभाषी तथा सत्य भाषी होना ही चाहिए। अप्रिय सत्य का त्याग करना चाहिए। मजनशील व्यक्ति को कम बोलकर उस समय का उपयोग नाम-जप तथा भगवचर्चा में करना चाहिए। भगवतचर्चा और भगव-नाम जप कीर्तन मौन का ही रूप है इससे वाक् शक्ति में सत्य एवं सयंम की सिद्धि होती है। जिसने अपनी वाणी का सयंम कर लिया वह मानसिक शारीरिक तथा ईन्द्रियात्मक सभी वेगों-जैसे मन का वेग, क्रोध का वेग, रसना का वेग, उदर तथा उपस्थ इन्द्रिय के वेग का शमन सहज में ही कर लिया। बोलने की इच्छा हो तो भगवत् चर्चा करो, भगवन्नाम करो, हरे कृष्ण नाम करो, नाम करो, नाम करो नाम करो

हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण-कृष्ण हरे हरे।
हरे राम, हरे राम, राम राम हरे हरे॥

ऐसी चेष्टा करनी चाहिए कि जिससे एकान्त में अकेले ही मन प्रसन्नता पूर्वक स्थिर रहे। प्रफुल्लित चित से एकान्त में स्वांस द्वारा निरन्तर नाम जप करने से ऐसा हो सकता

जीवन में सुख-दुःख दोनों आते हैं
जब दुःख आये तो हरि स्मरण करो
जब सुख आए तो हरि शरण में जाओ
और जब सुख-दुःख दोनो रहे तो सर्वस्व समर्पण करो हरि को।

काम करत होइहें प्रभु नियरे

-ई. राजेश्वर

एह दुनिया में बसल सगरो मनई काम-काज छोड़ि के हमेसा पूजा-धियान में लगल नाही रहि सकेलन। एही से महातमा लोग गीता जइसन धरम ग्रन्थन कऽ मिसाल देई के बराबर समझवले कऽ कोसिस करेलन कि सगरो काम-काज भगवान के सरण में रहि के करेके चाही जवना से कल्याण भइले में कवनों कोताही ना रहेला। निश्चित रूप से कल्याण होला। केहू-केहू भाई ई सवाल उठावेलन की काम करत समय भगवान कऽ भजन कइले में काम ठीक से ना होई अउर काम ठीक से कइले पऽ भजन ना हो पाई। एक मतिन सोच भइल ठीक हऽ। सुरू-सुरू में काम कइला के साथ भजन में कमी चाहे भजन के साथे-साथे काम कइले पऽ काम में कमी जरूर होई लेकिन काम में कमी अइला पऽ भजन छोड़े के ना चाही। निरन्तर भजन करत-करत काम कइला के अभ्यास में काम में कमी ना होला। भजन मन से होला, अउर काम हाथ से, देही से। जरूरत हऽ अभ्यास कइले कऽ। भगवान के किरपा से सब ठीक हो जाला।

जब हमनी कऽ कौनो काम कइल जाला वोह समय साँस वा बोली-बानी से भगवान के नाम कऽ जप अउर उनकरा सरूप कऽ धियान कऽ काम कइला कऽ अभ्यास करेके के चाही। काम करत समय ई भाव रखे के चाही कि ई काम भगवान कऽ हउवे, उनहीं के आदेश से करत हई। उनही के खुसी-खातिर करत हई। भगवान पास में खड़ा होके देखत हउअन-एइसन समझि के खुश रहे के चाही।

लेकिन एह मतिन अभ्यास कइला में कुछ चीज वहुते रूकावट पैदा करेलन, ऊ ह- क्रोध, ईरषा, भय, सोक, मोंह, घमण्ड, राग-द्वेष अउर घृणा आदि। ई चीजन के दुष्मन समझि के इनसे छुटकारा पवले कऽ कोसिस करे के चाही। इनहन से छुटकारा पवले कऽ उपाय हऽ भगवान के शरण में हमेशा रहल। शरणागति होवले से उपर के रूकावट पैदा करे वालन चीजन से आसानी से छुटकारा मिल जाला। जवन चीज पवले कऽ कबहूँ इच्छा न होखे भले चाहे दूसरे के इच्छा से मिल जा वोकरा के पाई के ई समझे के चाही कि भगवान कऽ दीहल ईनाम हऽ एइसन समझि के प्रसन्न रहला से भी रूकावट पैदा करे वाले चीजन से छुटकारा मिल जाला। मन के खिलाफ कौनों काम होखला पऽ भगवान कऽ इच्छा से होखे वाला मानि लिहला से भी उपर वाले रूकावट दूर हो जालन। जब कौनो काम हमरा सब के मन के खिलाफ होवे तऽ माने के चाही कि एहमें भगवान कऽ जरूर हाथ हऽ। ई हमरा पऽ भगवान कऽ कवनों बड़हन दया हो रहल बा। सब कुछ जानि के भगवान हमार इम्तिहान में हम चूकि न जायीं। एह मतिन सोचि के जे लोग आनन्द कऽ अनुभव कइल करेलन सचहूँ कऽ भगवान कऽ भगत होलंन। भगवान के सगरों विधान में भगत लोगन के खुश रहे के चाही, भगवान मन के इच्छा के खिलाफ कभी-कभी कुछ दे के पाप से छुटकारा दियवला खातिर विधान कइल करेलन अउर

सहनशील धीरजवान बनवले कऽ उपाय कइल करेलन।

निन्दा अउर मान-सम्मान के खिलाफ कइल केहु कऽ हरकत जवने दिन से कमे अच्छा लगे लागे वोहि दिन से समझे के चाही कि भगवान के नियरे हम पहुँचत हई। भगवान के नजदीक पहुँचवईया के मान-बड़ाई अच्छा न लगेला। ऊँ जहर जइसन लागे लागेला। फूल कऽ माला पहिन के जवन खुशी हम सबके मालूम होला ऊहे खुशी जूतन के माला के साथ भी मिले तब समझे के चाही कि भगवान के नजदीक हई। हमरा सब के चाही कि निन्दा करवइन के भी वोही भाव से देखे के चाही जवना भाव से अपना सब कऽ बड़ाई क गुनगाण करवइन के देखल जाला। महत्मा कबीर दास जी तऽ इहवाँ ले कहि दइले हउअन की आपन बुराई बतियावे वाले निन्दक लोगन के अपने नियरे कुटिया बनवा के बसावे के चाही।

निन्दक नियरे राखिये, आंगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुनबिना, निरमल करे सुभाय॥

कहले कऽ मतलब ई हउवे की आपन निन्दा करे वाले मनई के अधिक से अधिक नजदीक रहले के कोशिश करेके चाही काहे से कि जेतना ऊ निन्दा करी, कमी उजागिर करी वोतने सुधरले कऽ हम अपने के कोशिश करब। मनई के आपन दोष आपने नाही दिखाई पड़ेला, लेकिन केहूँ दूसरे के जरिए उजागिर भइले पऽ कल्यान चाहे वाला मनई दोष सुधरले क कोशिश जरूर करी। यानि कि आपन बुराई खुशी-खुशी सुने खातिर सुभाव बनवले कऽ कोशिश करे के चाही।

अपने से प्रेम करे वालन के साथ प्रेम जानवर लोग भी कइल करेलन। कुकुर, गदहा आदि कवनो जानवरके सबूत के रूप में देखल जा सकेला। अक्सर देखल जाला कि एक कुकुर दूसरे के चाटेला तऽ दूसरो प्रेम जतावे खातिर पहिलका के चाटे लगेला। एही मतिन एक गदहा दूसरका के चाटी तऽ दूसरका भी अपन प्रेम जतावे बदे पहिलका के चाटे लागी। एही मतिन दुष्मनी करे वालन के बारे में भी होला। जदि हम मनई लोग भी प्रेम करे वालन के साथ प्रेम अउर दुष्मनी करे वालन के साथ दुष्मनी कइल जा तऽ मनई अउर जानवर में अन्तर कवन रहि जाई? हमनी के तऽ दुष्मनी करे वालन के साथ भी ढेर-सा प्रेम करेके चाही। एइसन कइला से ही मनई कऽ जनम पूर अउर निहाल होला।

मर्यादा पुरूषोत्तम भगवान श्री रामचन्द्रजी अपने जिनिगी में प्रेम-व्यवहार क जवन सरूप अपनवलन वोकर ऊँचाई कऽ अन्दाजा लगावल केतना प्रेरणा देवे वाला हऽ। निरपराध राम के कैकेयी दशरथ जी के इच्छा ना रहले पऽ भी चौदह बरिस जंगल में भेज दिहली। कैकेयीक बानी सुनि के आदेश रूप मानि के रामचन्द्र जी खुशी-खुशी जाये बदे तैयार हो गइलन। कैकेयी के बाती कऽ जवाब भगवान केतना नम्र होके मधुरी बानी में देत हउअन। कहते हउअन माँ! जंगल में गइला से मुनि लोगन से मुलाकात कऽ सुभाग मिली। बन गइले में पिता जी के आज्ञा कऽ पालन अउर आपके इच्छा कऽ पूर भइल दूनो होई। हमरे प्रिय भाई भरत के राजगद्दी मिली एहसे बढ़ि के हमरे सुभाग कऽ बाति अउर का हो सकेला?

तुलसीदास जी महाराज अयोध्या काण्ड में लिखले हउअन-

मुनिगन मिलन विसेषिबन, सबहि भाँति हित मोर।
तेहि मँह पितु अयसु बहुरि संमत जननी तोर॥

भरत प्रान प्रिय पावहि राजू।
निधि सब विधि मोहि सनमुख आजू
जो न जाऊँ बन ऐसेहु काजा
प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समजा।

विमाता कऽ कठोर बानी सुनि के कवनो चिन्ता कइले बिना भगवान हँसत-हँसत बनके ओर चलि दिहलन। एतने नाही चौदह बरिस बाद जब लौटि अइलन तऽ सबसे पहिले कैकेयी के लगे आदर भाव से गइलन। भगवान के एह व्यवहार से हमनी सबके सबक लेवेके चाही कि जिनगी में केहूँ केतनो कठोर व्यवहार करें लेकिन हमें वोकरा संग प्रेम कऽ व्यवहार करे के चाही।

जब केहू के हमरा पऽ क्रोध आवे तऽ समझे के चाही कि कवनो हमरा से गलती हो गल बा। हम कहीं से दोषी हई। एही से उनकरा क्रोध आइल बा। जदि हमरा से कवनो गलती ना भइल होत त उनका काहे क्रोध आवत? केहूँ पऽ क्रोध अइला पऽ अपने के ही अपराधी माने के चाही। केहू पऽ क्रोध भी ना करे के चाही। केहू पऽ क्रोध कइल भगवान प क्रोध कइल हऽ। एही से केहू पऽ क्रोध ना कइके सबके साथ प्रेम करेके चाही। केहू के साथ प्रेम कइल भगवान के साथ प्रेम कइल हऽ। एह मतिन प्रेम से भरल व्यवहार कइला से हम भगवान के भी नियरे होत जाब अउर प्रिय बन जाब।

जेष्ठ मास दिन मंगलवार शुक्लपक्ष की दशमी तिथि, इस्तनक्षत्र को गंगादेवी हिमालय से निर्गता हुई/ इस तिथि को गंगास्नान करने से दशविध पाप का क्षय होता है एवं अयुट वाजिमेध यज्ञ का सौ गुना पुण लाभ होता है।

सावित्री सरस्वती

सावित्री महर्षि ब्रह्मा के पत्नी थी। यह परम पूजनीया, राम पवित्र और सरल स्वभावाली थीं। घर-गृहस्थी के कामों में तो कुशल थी हीं, साथ ही आध्यात्मिक ज्ञान में भी यह खूब समझबूझ रखती थी। सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार नाम के चार पुत्र तथा सरस्वती नाम की एक कन्या इनकी कोख से पैदा हुए थे। आजकल की तरह उस समय पठन-पाठन का प्रचार नहीं था। न कहीं पुस्तकें थी न पाठशालाओं का नामनिशान। लोग वेद के मंत्र सुनकर कंठ कर लेते थे। इसी कारण वेदों को श्रुति कहा जाता है। सावित्री ने अपनी संतान को स्वयं ही शिक्षा दी थी। चूँकि सावित्री स्वयं गुणवती और आध्यात्म-विद्या में प्रवीण थी इसलिए इनकी पांचों संतानें परम विद्वान् हुई। यहां तक कि उनकी विद्वंता की प्रशंसा हमारे देश में आज तक होती है।

ऋषि पत्नियों की सभा में सावित्री अपनी संतान को साथ ले जाती और वहां इन्हें तथा दूसरी ऋषि संतानों को उपदेश दिया करती थी। निवृत्ति पर वहां ही चर्चा होती थी। परिणाम यह हुआ कि इनके सत्संग के प्रभाव से इनकी संतान में विरक्ति आ गई और चारों ऋषि पुत्रों ने अपना समस्त जीवन विद्याध्ययन में ही लगा दिया। फलतः उनमें से सनत्कुमार आयुर्वेद के ज्ञाता एवं परम पंडित निकले और सरस्वती आजीवन ब्रह्माचारिणी रह कर अनेक विद्याओं की अधिष्ठात्री हुई। लेख प्रणाली, गणित और रागविद्या आदि अनेक विद्याओं का प्रचार करनेवाली यह देवी है।

सभाओं में सावित्री सदैव यही कहा करती थी-''मनुष्य में सावित्री बालक के समान निलेप रहना चाहिए क्योंकि इन प्रकार जीवन व्यतीत करने से आत्मसुख प्राप्त होता है और दुःख से छुटकारा मिलता है।'' इनके उपदेश का इनकी संतानों पर पूरा प्रभाव पड़ा मालूम होता है। क्योंकि सनत्कुमार आदि आज भी बालऋषि के नाम से प्रसिद्ध है और सरस्वती का हाल भी सर्वविदित है। उनके चित्र में आज भी भोलापन और बाल्यावस्था की निर्दोषिता प्रदर्शित की जाती है।

घर के काम-काज से जो समय मिलता उसमें सावित्री बालकों को नीति, धर्म पतिव्रत और ईश्वरीय ज्ञान की शिक्षा देती थी। शास्त्रों में कहीं-कहीं यह भी लिखा है कि धर्मशास्त्रों का संग्रह करने में यह ब्रह्मा की मदद करती थीं और ब्रह्माजी भी हर बात में इनका परामर्श लेते थे।

इस देवी की आत्मा और हृदय इतना स्वच्छ और इनका आचरण ऐसा शुद्ध था कि उस समय भी इनके समान पवित्र व्यक्ति बहुत कम थे। फिर भी यह पति (ब्रह्माजी) से अक्सर स्त्री धर्म की चर्चा किया करतीं और उन उपदेशों से अन्य स्त्रियों को भी लाभ पहुँचाती थी। सामवेद के गान में यह अद्वितीय थीं, जिस छंद को यह बड़े प्रेम से गाती थी, कहते हैं कि ब्रह्माजी ने उसे इन्ही के नाम से प्रसिद्ध किया है।

बड़े मीठे शब्दों में यह सदा पतिकी प्रार्थना

किया करती थी! ब्रह्माजी भी इन्हें बड़ी स्नेहदृष्टि से देखते थे और पति-पत्नी दोनों सदा परस्पर मं मग्न रहते थे।

सरस्वती

सरस्वती ब्रह्मा की पुत्री थी। इनकी माता का नाम सावित्री था। यह अत्यंन्त सुन्दरी और रूपवती थी। सनक, सनन्दन, सनत्कुमार आदि अपने पुत्रों के साथ ब्रह्मा और सावित्री ने इन्हें भी वेदों की अच्छी शिक्षा दी थी। सरस्वती ने वेद-विद्या एवं अन्य शास्त्रों के अध्ययन में खूब मन लगाया और इस प्रकार अपने जीवन को आनन्दमय बना लिया था। यहाँ तक कि यह समस्त विद्याओं की साक्षात देवी कहलाने लगी थी। गानविद्या में यह बड़ी निपुण थीं। हाथ में सितार लिये हुए ईश्वर के भक्तियुक्त प्रेम में मग्न होकर यह ऐसे गीत गाया करती थीं, जिन्हें सुन कर मनुष्यमात्र ही नहीं वरन् वनचर पशुपक्षी भी मुग्ध हो जाते थे। अपनी तीव्र बुद्धि से इन्होंने संसार में अनेक विद्याओं का प्रचार किया है। जिस संगीत शास्त्रों से छन्दादि के पठन-पाठन और गाने की रीतियां ज्ञात है वह इन्ही की स्वाभाविक और विलक्षण बुद्धि के विचार का फल है, निस्सन्देह श्रुति पहले से थी परंतु संस्कृत के ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में जो भाषा मिलती है, बहुतों का ख्याल है कि वह इन्ही की निर्माण की हुई है। सभा में व्याख्यान देने का प्रचार सर्वप्रथम इन्होंने ही किया था, गणित-विद्या को भी अनेक लोग इसी सर्वगुण सम्पन्न देवी के तीक्ष्ण विचार और परिश्रम का फल बतलाते हैं। स्वर और व्यंजन आदि इन्होंने ही बनाये हैं। मतलब यह है कि इस देवी के आचरणों की इस संसार में इतनी अधिक प्रतिष्ठा हुई कि इनका नाम ही विद्या के समान अर्थ का सूचक बन गया है।

सरस्वती अत्यन्त प्रतिष्ठित और पूजनीय देवी थी। उस समय के ऋषि-कुमार प्राय: बड़े सुयोग्य और सुशिक्षित हुआ करते थे परंतु उस समय भी सरस्वती के योग्य कोई वर नहीं मिला। अत: इन्होंने अपना समस्त जीवन ब्रह्मचर्यावस्था में और सदैव विद्याध्ययन एवं नीतियुक्त शिक्षा प्राप्त करने में ही व्यतीत किया। सरस्वती इस बात का एक उत्तम उदाहरण है कि प्राचीन काल में विवाह करने की इच्छा न होने पर कन्याओं को कुंवारी रहने की भी स्वाधीनता थी।

ब्रह्मा से लेकर जैमिनी के समय तक सरस्वती की दी हुई विद्या का प्रचार इस देश में खूब रहा। पुराने समय मे इस देश में 'सरस्व्ती' के तात्पर्य को सब लोग भलीभांति समझते थे। विद्याभ्यास के लिए इन्होंने जो नियम प्रचलित किये थे उनका भलीभांति पालन होता। परंतु अब हालत बदल गई है। मोर पर विराजमान वीणाधारिणी सरस्वती के दर्शन तो हम सब करते हैं, किंतु उनके बताये हुए ज्ञान को उपार्जन करने का जरा भी प्रयत्न नहीं करते।

दीपावली का पवित्र दिन इस पवित्र एवं विदुषी देवी की यादगार का दिन है। इस दिन सरस्वती की पूजा करके बालकों को विद्या का आरंभ कराया जाता था और पकी हुई उम्र के लोग हिसाब-किताब की जांच करते थे। लोग इस समय से विद्या सीखने की प्रतिज्ञा करते थे ओर इस भांति

सरस्वती देवी की वास्तविक प्रतिष्ठा करके अपने आचरणों को सुधारते थे। परंतु अब तो सांप के चले जाने पर लकीर को पीटना रह गया है। आज भी हमारे देश में दीपावली का उत्सव बड़े जोड़-शोर से मनाया जाता है। व्यापारी लोग इस अवसर पर सरस्वती पूजन जरूर करते हैं। परंतु जो समय विद्या के गुढ़ अंशों पर विचार करने में गलाना चाहिये, उसका अधिकांश व्यर्थ के सैर सपार्टो और आतिशबाजी छुड़ाने व जुवा खेलने में बिताया जाता है।

सरस्वती नाम की एक नदी भी हमारे देश में है। प्राचीनकाल में इस नदी के तट पर विद्यार्थियों का आश्रम रहा होगा, जहां ऋषि मुनि एकत्र होकर मीठे स्वर से वेदध्वनि किया करते होंगे और इस आश्रम से शिक्षा प्राप्त कर देश के हरेक भाग में विद्या प्रचार करते होंगे। वास्तव में वह एक पवित्र स्थान होगा, जहां शुद्ध विचार और पवित्र आचरण रखने को दी जाती होगी। पर आज तो सरस्वती की सिर्फ इतनी ही प्रतिष्ठा रह गई है कि इसमें स्नान करना ही मोक्ष प्राप्ति का एक साधन समझा जाता है। यदि हम सरस्वती के स्नान की सच्ची महिमा को समझें तो हमें अपनी आत्मा को शुद्ध ओर आचरणों को पवित्र करने का प्रयत्न करना चाहिए।

सरस्वती का नाम आज भी हमको सच्चाई पर चलने की राह बतला रहा है और आशा की जाती है कि आर्य संतान किसी समय अपनी माता-सरस्वती के सच्चे पुत्र कहलाने के योग्य बनकर माता के नाम की यथावत् प्रतिष्ठा करते हुए, देश की दशा को सुधार लेंगे। उस समय चारों ओर वेद पाठ की मधुर ध्वनि सुनाई देगी, हमारी गृहदेवियां सरस्वती के बनाये हुए नियमों का पालन कर परमविदुषी देवियां बनेंगी और हमारा भारतवर्ष वास्तव में स्वर्गधाम बन जायेगा।

सद्यःपातक संहन्त्री सद्यो दुःखविनाशिनी।
सुखदा मोक्षदा गंगा गंगैव परमा गतिः॥

एक अनुभूति

स्वर्ग के तोरण-द्वार पर बाबा के दर्शन

-रतनलाल जोशी

सन् 1973 के दिसम्बर महीने की बात है। एक महीने की दारूण बीमारी ने शरीर और मन को रस निचोड़ा ईख बना कर रख दिया था रोग डाक्टरों के लिए मायामृग बना हुआ था, उनकी पकड़ में ही नही आ रहा था-फलत: दवाओं का परिणाम भी विपरीत ही हो रहा था। प्राणशक्ति का क्षरण इस सीमा तक हो चुका था कि अक्सर चेतना अन्तर्ध्यान हो जाती और आत्मीय-स्वजनों के पुकरने पर ही फिर से जाग्रत हो पाती थी। अन्न छूट गया था, केवल अस्तित्व की शर्त कि जीवन एक क्षीण-शीर्ण धागे के रूप में देह से अटका हुआ था। डाक्टरों ने आशा छोड़ दी थी। मित्र-समुदाय जरूर ढांढस बंधाता था, मगर यह तो कर्त्तव्य वशात् ही था। चिन्ता ओर भय की अतल गहराई उनकी आँखे मुझसे छिपा नहीं पाती थी।

मुझे अच्छी तरह् याद है। उस दिन मंगलवार था। दिसम्बर का महीना था। सर्दी थोड़ी ज्यादा थी। अपराह्न के चार बजे मेरे शरीर में एक तीव्र कंपकंपी सिर-से-पैर तक दौड़ गयी और उसके बाद इतना तेज पसीना आया कि कपड़े भींग गये। बस इतना मुझे ज्ञात हैं। करीब तीन घंटों में मुझे होश आया और जब आंख खुली तो करीब आधे घंटे तक मुझे न तो अपने पर विश्वास आया और न मेरे आस-पास की दुनिया पर। करीब साल भर मेरी यही हालत रही। पचासों बार यह दौर आया और गया। इस दौर के दरम्यान मुझे यही लगता कि मैं वह नहीं हूं जो उस मंगलवार से पहले था और जो संसार मुझे चारों ओर से घेरे हुए हैं, वह मेरा संसार नहीं है, किसी दूसरे व्यक्ति का है, भूल से मुझे सौंप दिया गया है।

इन नवीन चेतना के दौर का असर मुझ पर प्राय: तीन-चार दिन तक रहता, मैं अपने-आपको एक भिन्न व्यक्ति अनुभव करता। प्रचलित काम-काज में मेरा मन नहीं लगता-न मौन एवं एकांत ही भाता था और न जन-संकीर्णता ही। अकेला रहता तो ऐसा भान होता मानो किसी अतल गहराई में डुबकर खो गया हूं या कण-कण बिखर कर अस्तित्वहीन हो गया हूं। लगता कि एक धुंधला बिन्दु भी नहीं हूं मैं - कुछ भी तो नहीं हूं।

हाँ, उस मंगलवार को जब मैं चेतनाशून्य हो गया था, तो उस घोर अंधकार में जो कुछ मैंने देखा, वह आजीवन अविस्मरणीय रहेगा। मुझे याद था कि मेरी आंखें खुली हुई थी, किंतु मेरे सामने जो था, वह मैं नही देख रहा था, कुछ और ही देख रहा था। मुझे लगा कि मैं बड़ी तेजी से नीचे उतरता जा रहा हूं, इतनी तेजी से कि जैसे मैं भारहीन हो गया हूं और ऊंचाई-निचाई अथवा गति मेरे शरीर के लिए कोई चीज नहीं है। काफी देर तक यही क्रम रहा मैं लगातार नीचे बढ़ता गया। चारों ओर अंधकार था निस्सीम अंधकार। दिशाओं की दीवारें ढह गयी थी। अनन्त मुक्ताकाश मेरे आस-पास था-शब्दहीन, वर्णविहीन मौन से आवृत्त।

इस निर्विकार निस्सीम शून्य में मुझे सुख-सान्त्वना का अनुभव हुआ जब ये ध्यान एक अतुलनीय शांति के सुरभित स्पर्श से अपनी सौम्य शीतलतामें मुझे एक विलक्षण तृप्ति की अनुभूति दे रहे थे। सुख की यह अनुभूति धीरे-धीरे बढ़ती जा रही थी और उसके साथ-साथ मेरे नीचे उतरते जाने की गति भी। अंधकार का भी यही क्रम था-मुझे लगा, वह भी उत्तरोत्तर सघन एवं काला होता जा रहा था-काजल से भी हजार गुना ज्यादा काला और एवं अचल?

सुख-सान्त्वना की इस अनिर्वचनीय अनुभूति में सहसा एक महान् परिवर्तन हुआ। अकस्मात् एक बिजली-जैसी कोंधी-निःशब्द और उस अनन्त-अखंड मौन-जैसी ही एक मूक विद्युत उस दिक्कालहीन अंधकार को ऐसे पी गयी जैसे वह कभी था ही नहीं। चारों तरफ वसन्त के सूर्योदय की भांति प्रकाश फैल गया-मीठा-मीठा प्यारा-प्यारा प्रकाश ओर मैने पाया कि मैं उस शून्य में घुलमिल कर शून्य नहीं हो गया हूं, मैं शेष हूं, मेरा अस्तित्व है-मैं हूं।

मैं उस प्रकाश के भीतर देखने का प्रयत्न करने लगा- पहले के अतल-असीम अंधकार की तरह वह प्रकाश भी अनन्त था-दिशाहीन, शब्दहीन। काफी देर तक मैं इस प्रकाश से घिरा रहा। महासागर की मछली की तरह उसमें डूबता-उतरता रहा। फिर अपलक देखा कि उस प्रकाश के भीतर से एक मानव-आकृति उभर रही है। उस आकृति की रेखाएं बड़ी तीव्रता से स्पष्ट होती जा रही है। उस उजाले के पट पर जब वह उज्ज्वल मूर्ति पूरी साकार हो गयी, तो मैंने पाया कि केवल उस मूर्ति का ही आलोक शेष रह गया है और वास्तव में वह सारा अनन्त प्रकाश सहस्र-सहस्र किरणों के रूप में उस मूर्ति से ही मिलकर दिग्दिगन्त में फैलता जा रहा है।

थोड़ा और स्पष्ट होते ही उस मूर्ति को मैंने पहचान लिया। मेरे देखते-ही-देखते वह आकृति अपनी परिपूर्ण तेजस्विता में निखर गयी। चकित विह्वल मैं उसे अपलक देखता रहा। वह मूर्ति भी अचल खड़ी थी और अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से मुझे एकटक देख रही थी। कैसी आंखें थीं वे-ममत्व का पर्वत जैसे उनमें पिघल गया हो। मैंन देखा, उन आंखों से दूध-जैसी तरल किरणें निकल रही हैं और वे किरणें मेरे अंग-प्रत्यंग का अभिषेक कर रही है-मैं सिर-से-पैर तक स्नेह-सुख-स्नात हूँ। न-जाने कौन सी सुधा-संजीवनी छिड़क रही है वे आंखें मेरी देह पर कि मैं आनन्दातिरेक में अपनी हस्ती भूल गया हूँ। बड़ी देर तक स्नेह-स्निग्धता-वर्षण की यह स्थिति बनी रही। वह प्रसन्नवदन मूर्ति अपनी शशिस्मित में अनिमेष मुझे देख रही थी और मैं प्रेम-पयोधि-जैसी आखों से बरस रहे आनन्द में सरावोर खड़ा था।

काफी लम्बे समय के बाद उस मूर्ति ने अपने अधर खोले। मुझे संबोधन करते हुए बड़े मधुर स्वर में कहा-''क्यों, कुछ छूट गया है क्या पीछे?''

मेरे मुख से निकला-''नहीं, छूटा तो कुछ भी नहीं है।''

वह मूर्ति और भी ममत्व-भरे स्वर में बोली-"तो फिर यहां इस नदी के किनारे खड़े-खड़े क्या सोच रहे हो? नदी को पार क्यों नहीं कर लेते हो? काफी देर से खड़े हो, मैं देख रहा हूं।"

मैंने नीचे देखा, तो सचमुच नदी थी मेरे पैरों के पास-एक विशाल नदी, जिसके दूसरे किनारे पर एक छोरहीन स्वर्ण-नगरी बसी हुई थी। बड़े-बड़े भवनों वाली उस नगरी के चारों कोनों पर हीरे के विशाल गुम्बद थे और नगर के बीचों-बीच एक गगनचुम्बी स्तम्भ था जो अपने मूल में मंथर गति से गोल धूम रहा था और उस पर इन्द्रधनुष के रंग चमचमा उठते थे एक विचित्र प्रकार के धुंए से वह नगर आच्छादित था। सफेद धुएं के बादल ऊपर-नीचे, दायें-बायें सब तरफ थे।

मगर मैंने देखा कि नगर की बस्ती इतनी सघन है, फिर भी कहीं कोई कोलाहन नहीं-सांस का भी शब्द नहीं। विस्मय-जड़ खड़ा मैं न जाने कब तक देखता रहा उस लम्बी-चौड़ी सोने की नगरी को, जो अपनी बनावट में किसी अत्यन्त सुदक्ष इंजीनियर की कृति लग रही थी, किन्तु जिसमें अचल मौन का ही निवास था-न कहीं कोई गति थी और ना स्वर!

मुझे इस स्थिति में विस्मृत देख उस मूर्ति ने अपना दायां हाथ उठाया और उस स्वर्ण-नगर की ओर इशारा करते हुए कहा-"उसे अमरापुरी कहते हैं। देवों का निवास है वह। क्या वहां जाने की इच्छा है तुम्हारी?"

मैंने एक बार और उस स्वर्ण-नगर की ओर देखा और स्पष्ट स्वर में उत्तर दिया-"नगरी बड़ी सुन्दर है, किन्तु मैं वहां नहीं जाना चाहता।"

"क्यों? क्या भय लगता है?"-उस दिव्याकृति ने मुझसे पुछा।

"नहीं। भय कैसा? किससे डरूंगा? यहां-वहां कोई कुछ भी तो नही है। शून्य में किसका डर?" मैंने तर्क किया।

अपने भुवन-मोहिनी मुखछवि में वह पुरूष थोड़ा मुस्कुराया, बोला-"तो फिर क्यों जाना नहीं चाहते? इतना आ गये हो तो आगे भी जाओ।"

"मुझे लगता है कि यह सब भ्रम है-स्वप्नहै। इस मिथ्या में जाकर मुझे क्या मिलेगा?" मैंने अपने-आपको स्पष्ट किया।

"और क्या तुम स्वयं भ्रम नहीं हो? क्या यह नहीं हो सकता कि तुम स्वयं भ्रम हो और यह सब सत्य है?" वह व्यक्ति और मुस्कराया।

"हां, यह भी भी हो सकता है। क्या सही है मुझे यही खोजना है।"

वह देवोपम व्यक्तिअपनी आंखों में अपार माधुर्य भरे मुझे घूरता रहा, काफी देर तक। फिर बोला-"कहाँ खोजोगे इसे?"

मैं आत्म-विमूढ़ अवाक् खड़ा था। क्या उत्तर देता मैं? आगे बढ़ा और उस ज्योतिर्मयी आकृति के पैरों में झुक गया। मुझे आज भी याद है। मैंने उन पावन चरणों का स्पर्श किया था, मैंनें उन पाद-पद्मों में अपना सिर टेक दिया था।

उन्होंनें मुझे उठाया नहीं। मेरा स्पर्श भी नहीं

किया। केवल यह कहा-''समर्पण उपलब्धि के द्वार खोल देता है। जाओ खोलो द्वार। खोजना किसी और को नहीं, अपने को ही खोजना है।''

थोड़ी देर बाद ही मेरी आंखें खुल गयीं। मैं रो पड़ा, नहीं खुलती तो अच्छा था। अपने को बहुत धिक्कारा। कितना पा गया था? क्या वापस आकर कुछ पा सकूंगा? क्या इस दानवीय अहम् को अर्पण बनाकर उन चरणों में फिर चढ़ा सकूंगा?

मन बड़ा छटपटाया। कानों में वे शब्द गूंजते रहे-''समर्पण उपलब्धि के द्वार खोल देता है-खोजना किसी और को नहीं, अपने को ही खोजना है।''

मरण-द्वार पर आकर जिसने ममत्व-पीयूषी स्वर में ये शब्द कहे, क्या उनकी ऐसी महती करूणा इस नये जीवन में मिल सकेगी? क्या इतनी पात्रता कमा सकूंगा मैं?

प्रश्न क्षीण होते होते आज शून्य हो गया हैं-खंडहर भी तो नहीं मिलते उनके? किन्तु वे शब्द जरूर आते हैं, बार-बार आते हैं और मेरे अंधेरे को आलोकित कर जाते हैं।

ये शब्द थे भगवान् सीतारामदास के जिन्हें मैंने मृत्यु के उस छोर पर, उस मृत्युविहीन क्षण में, प्रत्यक्ष पा लिया था। यों बाद में उनके दर्शन दर्जनों बार किये किन्तु मरण के तोरण द्वार पर मेरी चेतना को अपनी करूणा की किरणों से भिगोती वह मूर्ति अद्वितीय थी, उन दो नयनों से कैसा आश्वासन टपकता था- मानो आश्वासन के इस अमृत-घूंटसे ही इस सृष्टि में प्राण-स्पन्दन है।

गुरुगण, पितृगण, देवगण, दिक्पालगण, ग्रहगण, ऋषिगण, चारण, सिद्ध, गंधर्भ और किन्नरगण एवं देव-देवीगण सबों को मैं प्रणाम करता हूँ। आप हमारे गंगा-स्नान यात्रा में सिद्धिदायक हों।

श्रीश्री गुरुवे नमः

संघ समाचार

श्रीश्री ठाकुर सीताराम दास ओंकारनाथ देव के पोत्र गुरु किंकर जगन्नाथ देव एवं गुरु माता श्रीमती लक्ष्मी देवी ने दक्षिण, पश्चिम एवं मध्य भारत के विभिन्न शहरों, नगरों एवं प्रांतों में दो मास से अधिक अवधि तक नाम प्रचार किया। इस अवधि में उन्होंने भारत के दस राज्यों के लोगों को दीक्षादान, सत्संग, प्रवचन एवं नगर परिक्रमा कर नाम महिमा से अवगत कराया।

इनमें से ब्रह्मपुर (गंजाम), आन्ध्रप्रदेश के हिमालयम, गुँटूर, तामिलनाडु के चेन्नई, केरल के कालाडिह, गुरूवायुर, कर्नाटका के उडूपि, गोवा के शान्ता दुर्गा देवस्थानम, महाराष्ट्र के पण्टरपुर, पूणा, मुंबई, गुजरात के सूरत, अंकलेश्वर, कम्बोई, नारिया, अहमदाबाद, मेहसाना, मध्यप्रदेश के ओंकारेश्वर, उज्जैन के नजदीक आँचलकेरी, छत्तीसगढ़ के रायपुर इत्यादि विशेष उल्लेखनीय है।

इन सभी स्थानों में भक्ति की स्रोत प्रवाहित हो रही थी। सभी स्थानों में गुरुजी की उपस्थिति में विविध प्रकार के अनुष्ठान भी सम्पन्न हुए। करूणा के अवतार हैं गुरुजी और उनकी कृपा से वहाँ की धरती और धरतीवासी धन्य-धन्य हो गये।

इस प्रकार नाम प्रचार एवं नाम का रसास्वादन कराते हुए गुरुजी एवं माता 23 दिसम्बर, 2008 को कोलकाता वापस लौटे।

गुरुजी का आगामी कार्यक्रम इस प्रकार है:

1. 11 जनवरी 2009 को बेलघरिया के यतीनदास काली बाड़ी में ठाकुर श्रीश्री सीताराम दास ओंकारनाथ देव का जन्मोत्सव गुरु किंकर जगन्नाथ देव की उपस्थिति में पूजा, प्रार्थना एवं अखंड नाम संकीर्तन के साथ बड़ी धूम-धाम से मनाया जायेगा।
2. पश्चिम बंगाल के वीरभुम जिले के अंतर्गत केन्दुविल्व ग्राम में प्रत्येक वर्ष पौष माह में जयदेव मेला लगता है। यहां स्थित श्रीश्री ठाकुर के आश्रम में लाखों-लाखों लोग भक्ति भावना से ओत-प्रोत हो इकट्ठे होते हैं। उपस्थित सभी भक्तों पर गुरु कृपा बरसती रहती है क्योंकि गुरुजी (किंकर जगन्नाथ) स्वयं इस महोत्सव का नेतृत्व करते हैं। इस पुण्य अवसर पर तीन दिनों तक अखण्ड नाम संकीर्तन, नर-नारायण सेवा, दीक्षादान, पूजा, पाठ, प्रार्थना आदि चलते रहेंगे। इस अवसर पर आश्रम का निर्माण कार्य भी शुरू किया जायेगा।
3. पश्चिम बंगाल के महेशतला में संघ जननी श्रीमती कमला माता के जन्मोत्सव को माघ शुक्ल तृतीया को मनाया जायेगा। जन्मोत्सव का आयोजन किंकर जगन्नाथ देव की उपस्थिति

में सम्पन्न होगा। यह उत्सव पश्चिम बंगाल के बाटा नगर, महेशतला में होगा।

4. श्रीश्री ठाकुर का जन्मोत्सव लाखों भक्तों की उपस्थिति में प्रत्येक वर्ष की भाँती इस वर्ष भी फाल्गुन कृष्ण पक्ष पंचमी तिथि को गुरु किंकर श्री जगन्नाथ देव की उपस्थिति में उनके पैतृक आवास डुमरदह के ब्रजनाथ निकेतन, सदानन्द मठ, महामिलन तथा भारत के सभी घरों में बड़े धूम-धाम से मनाया जायेगा। इस उपलक्ष्य में अखण्ड नाम संकीर्तन, पूजा, प्रार्थना तथा समस्त नर-नारियों के लिए सभी जगहों में भोग प्रसाद वितरण का आयोजन भी किया जायेगा।

5. श्रीश्री ठाकुर के जन्मोत्सव के अवसर नाम-संकीर्तन प्रतियोगिता का आयोजन किया जायेगा। पश्चिम बंगाल के हावड़ा स्थित शिवपुर 17 फरवरी और हावड़ा स्थित बालिटीकुरी में ठाकुर के अविर्भाव के उपलक्ष्य में दीक्षादान, नर-नारायण सेवा, पूजा, प्रार्थना का आयोजन किया जा रहा है।

आने वाले डेढ़ महानों में मूलतः गुरुजी पश्चिम बंगाल के आस-पास के इलाकों में नाम-प्रचार के लिए निकलेंगे।

गुरु कृपा से मध्यप्रदेश में ठाकुर के एक शिष्य हैं जिनका नाम किंकर गोपाल दास है। जो ठाकुर की कृपा से वहां के आस-पास तथा देश के बहुत से इलाकों में ठाकुर के आदर्श को स्थापित कर विभिन्न प्रकार के धर्मानुष्ठान सुचारू से संचालित कर रहे हैं। इन्होंने चालीस जोड़े ऐसे लड़के-लड़कियों का व्याह रचाया हैं जिनके माता-पिता अर्थ-विहिन हैं या जिनका अपना कहने के नाम पर कोई नहीं है। इन पर गुरु जी की असीम अनुकंपा है। हजारों व्यक्तियों को अपने साथ लेकर देश के चारों धामों की यात्रा कर श्री भागवत् पारायण, नामयज्ञ सदाव्रत इत्यादि विशेष किये हैं और अब भी कर रहे हैं।

: जय गुरु :



मुख्य समाचार

भक्त पाठकवृंद

श्रीश्री ठाकुर ओंकारनाथ देव का एक आश्रम जयदेव पश्चिम बंगाल में निर्माणाधीन है। कार्य जोरशोर से चल रहा है। इस कार्य हेतु सेवा राशि, सेवाव्रती भक्तजन निम्नलिखित एकाउंट में जमा कर सकते हैं। आपके द्वारा दी गई छोटी से छोटी सेवा राशि हमारे लिए बड़ी है।

SRI SRI OMKARNATH ASRAM
Joydev Branch SBI Raniganj
AC-No. 30169664503

आनन्द संवाद

भक्त वृंद! आपको सूचित करते हुए अपार हर्ष हो रहा है कि श्रीश्री ठाकुर सी ओंकारनाथ देव के आदर्शों को घर-घर पहुँचाने वाली पत्रिका 'परमानंद की 2009 का पहला नया अंक लेकर आपके घर आ रही है। कृपया पाठक सदस्य अपना **सालाना सेवा रु. 60** (सदस्यता शुल्क) कोषाध्यक्ष के पते पर भेज दें। आप के सहयोग की अपेक्षा है। इस पत्रिका के उत्थान हेतु आप का योगदान प्रार्थनीय है। प्रत्येक सदस्य कृपया पाँच सदस्य अवश्य बनावें।

इस पत्रिका के उत्थान हेतु आप के द्वारा दी गई छोटी से छोटी सेवा राशि भी हमारे लिए बड़ी होगी। सेवा कोषाध्यक्ष के पते पर भेजें। आपकी **सुविधा के लिए मनीआर्डर फार्म पता के साथ भेजा जा रहा है। धन्यवाद!** –जयगुरु

श्री रविभूषण राय
244/बी. पथ संख्या-1डी
अशोक नगर, राँची पिन कोड-834 002
दूरभाष : 0651-2240365

प्रकाशन हेतु सेवा राशि (वर्ष -2009)

श्री राधाकृष्ण झा	रांची	1000.00
श्री रबि भूषण राय	रांची	1000.00
श्री अवध किशोर सिंह	बरूआरी (मुजफ्फरपुर)	1000.00
श्री अरूण कुमार	रांची	1000.00
श्री हरे राम सिंह	रांची	1000.00
श्री अवधेश पाठक	बिलासपुर	1000.00
श्रीमती कृष्णा सिन्हा	रांची	1000.00
श्रीमती रंजना वर्मा	रांची	1000.00
श्रीमती रत्ना प्रसाद	रांची	1000.00
श्रीमती सुशीला सिंह	रांची	1000.00
श्रीमती मन्दरावती	रांची	500.00
श्रीमती उषा किरण	रांची	1000.00
श्रीमती आरती झा	दिल्ली	500.00
श्रीमती शिरोमणि	रांची	1000.00

वर्ष-3 अंक 9
परमानंद की ओर
जनवरी-2009



श्री श्री कमला माँ

रजिस्ट्रेशन न०. R. D. No.: 91778
Date: 18-04-07
New R. D. No.: JHA, 19221, HIN/2007



परमगुरू दासरथि देव योगेश्वर

प्रकाशक-किंकर जगन्नाथ
श्री श्री ओंकार नाथ आश्रम ट्रस्ट
शाखा कार्यालय-36/सी०
पार्क रोड-1/बी०
अशोक नगर
राँची (झारखण्ड)
पीन-834002

स्वामित्व
श्री श्री ओंकार नाथ आश्रम ट्रस्ट
राँची शाखा

प्रकाशन स्थल-राँची (झारखण्ड)
36/सी पार्क रोड-1/बी
अशोक नगर, राँची (झारखण्ड)

सम्पादक-राधा कृष्ण झा
मुद्रक-संदीप कुमार
श्रेया ऑफसेट
प्रथम तल्ला, श्री दुर्गाटॉवर
एच० बी० रोड, राँची-834001

पोस्टल रजिस्ट्रेशन न०. RN-146/2008-2010
E-mail: guru.sudhadhara@gmail.com
Website: www.omkarnath.com



गुरू किंकर जगन्नाथ देव



श्री श्री माँ लक्ष्मी देवी